श्री अभचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत

कर्म-प्रकृति

निर्वाण ग्रंथ माला समिति
टूण्डला चौराहा
खुलने का समय 10 से 1 बजे तक
मो0 9219997181

संपादक :
उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

कृतिकार : अभचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत

कृति : कर्म-प्रकृति

शुभाशीष : प.पू. राष्ट्र संत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. जैनाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज

सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

सहयोगी : ऐलक श्री विमुक्त सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री विशंक सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री नित्यानंद सागर जी महाराज एवं संघस्थ सभी त्यागी-व्रती

संस्करण : प्रथम संस्करण, 2004

आवृति : 1100

प्रकाशक : श्री निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति

व्यवस्था राशि : अग्रिम प्रकाशन हेतु मात्र 10 रुपये

प्राप्ति स्थान : श्री निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति
श्री 1008 ऋषभदेव दि. जैन मन्दिर, ऋषभपुरी,
टूण्डला चौराहा, टूण्डला, जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)

प्राक्कथन

–उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

विश्व के समस्त दर्शनों में जैन दर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जिसमें कर्म सिद्धांत की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्याएँ की हैं। आत्मा के अस्तित्व को नित्य, अनित्य व नित्यानित्य स्वीकार किया है। जैन दर्शनानुसार आत्मा भेद, अभेद व भेदाभेद रूप है, एक, अनेक व एकानेक रूप है, शुद्ध, अशुद्ध व शुद्धाशुद्ध रूप है। बद्ध, अबद्ध व बद्धाबद्ध रूप है इतना ही नहीं यह मूर्तिक, अमूर्तिक व मूर्तिकामूर्तिक रूप है एक ही द्रव्य में परस्पर विरोधी दो वादों या धर्मों का कथन भी जैन दर्शन करता है। यही जैन दर्शन की विशेषता है। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु को अनेकान्तात्मक मानता है, अर्थात प्रत्येक वस्तु में एक ही समय में अनन्त, गुण, धर्म व विशेषतायें होती हैं, उनका क्रमशः कथन स्याद्वाद शैली या वंचन पद्धति से होता हैं।

आत्मा व्यवहार नय की अपेक्षा व अशुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा कर्मों से बद्ध मूर्तिक है, वे कर्म आत्मा को अनादि काल से बांधे हुये हैं। ऐसी पराधीन आत्मा कर्माधीन होने से अनादि-निधन संसार में जन्म-मरण करती हुई, कर्मों के फलों को भोगती है। कर्म ही आत्मा को संसार में घुमाने वाले प्रबल हेतु हैं, बिना कर्मों के कोई भी आत्मा संसार में परिभ्रमण नहीं कर सकती। आचार्य महोदय कारुण्य भावना से युक्त हो कर्म के सम्बन्ध में कहते हैं–

"जन्म-मरण रूप संसार परिभ्रमण में अद्वितीय निमित्त भूत कारण को कर्म कहते हैं अथवा जिसके उदय से जीव सांसारिक सुख-दुःख रूप फलों का अनुभव करते हैं उन आत्मा के अविनाभावी वृक्षों को **कर्म** कहते हैं अथवा पुद्गल के वे परमाणु जो कार्माणवर्गणा रूप लोकाकाश में विद्यमान हैं, जीव के राग, द्वेष व मोहादि विकारी वैभाविक परिणाम / भाव कर्मों के निमित्त से परिणमन कर आत्म प्रदेशों के साथ दूध-पानी की तरह एकमेक ही बंध को प्राप्त हो जाते हैं वे **कर्म** है।

उन कर्मों के मुख्य रूप से तीन भेद हैं–1. द्रव्य कर्म, 2. भाव कर्म, 3. नोकर्म।

आत्म प्रदेशों के साथ बंध को प्राप्त कार्माण वर्गणाओं के समूह को **द्रव्य कर्म** कहते हैं। द्रव्य कर्म बंध में कारण भूत अशुद्ध जीव के परिणाम ही **भाव कर्म** है। तथा तीन शरीर (औदारिक, वैक्रियक, आहारक शरीर) व छह पर्याप्ति (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वोच्छवास, भाषा, मन) रूप परिणत पुद्गल प्रचय जो कर्म बन्ध में किंचित कारण है **नो कर्म** है अथवा किंचित कर्म को **नोकर्म** कहते हैं। यह नोकर्म बिना कर्मादय के अपना फल देने में असमर्थ है।

द्रव्य कर्म बंध के मुख्य रूप से 4 (चार) भेद हैं–1. प्रकृति बंध, 2. प्रदेश बंध, 3. स्थिति बंध, 4. अनुभाग बंध।

प्रकृति बंध का अर्थ है कर्म का स्वभाव। संसार में विद्यमान प्रत्येक वस्तु या द्रव्य का स्वभाव भिन्न-भिन्न है। अतः वह उसकी प्रकृति कहलाती है। जैसे नीम की प्रकृति-कड़वापन, मिर्च की प्रकृति चरपरी, नमक की खारी, ईख की या गुड़ की मिष्ठ। जल की शीतल, आँवलें की कषायली (अम्लीय) धृत व तैलादि की स्निग्ध इत्यादि।

इस प्रकार आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों की प्रकृति भी आठ प्रकार की है। इसी प्रकृति बंध के मूल रूप से 8 (आठ) भेद हैं। तथा उन्हीं कर्मों की उत्तरोत्तर प्रकृतियों के अन्य-अन्य स्वभाव हैं। मूल-प्रकृति में हीनाधिकता व तारतम्यता लिए हुए 148 प्रकृतियाँ हैं।

ये 148 उत्तर प्रकृति बंध के भेद हैं–

मूल प्रकृति बंध के आठ भेद ये हैं–1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. मोहनीय, 4. वेदनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7. गोत्र, 8. अंतराय। इन्हीं मूल प्रकृतियों के क्रमशः पाँच, नौ, अट्ठाईस, दो, चार, तिरानवे, दो और पाँच (5 + 9 + 28 + 2 + 4 + 93 + 2 + 5) कुल 148 भेद हैं।

प्रदेश बंध का अर्थ है बंध को प्राप्त हुए पुद्गल प्रदेशों की संख्या या मात्रा। योग की मंदता व तीव्रता की तारतम्यता से प्रदेश बंध में भी हीनाधिकपना नियम से आता है। प्रकृति और प्रदेश ये दो बंध योग से होते हैं।

स्थिति बंध का अर्थ है कर्म प्रदेशों का जीव के साथ नियत काल तक बंधे रहना। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार साथ रहकर स्थिति पूरे होते ही फल देकर या बिना फल दिये अलग हो जाना। जितने समय तक कर्म आत्मा के साथ रहेंगे व फल देंगे यही काल मर्यादा / समय सीमा, स्थिति बंध कहलाता है। यह बंध मिथ्यात्व व कषायादि के निमित्त से होता है।

अनुभाग बंध का आशय है–कर्म के फल देने की शक्ति। जो कर्म जीव को तीव्र-तीव्रतर या तीव्रतम सुख या दुःख देगा या मंद, मंदतर व मंदतम सुख-दुःख देगा। या फल देने की हीनाधिक तारतम्यता रूप शक्ति ही अनुभाग बंध कहलाती है। यह शक्ति प्रत्येक मूल व उत्तर कर्मों में होती है। यह बंध भी कषाय आदि के निमित्त से होता है। कर्मों के उत्तरोत्तर भेद संख्यात, असंख्यात व असंख्यात लोक प्रमाण भी होते हैं।

संसारी जीव के मोह और योग के निमित्त से जो परिणाम होते हैं उन्हें **गुणस्थान** कहते हैं। ये संक्षेप व ओघ नाम से भी जाने जाते हैं। गुणस्थान चौदह होते हैं। 1. मिथ्यात्व, 2. सासादन, 3. मिश्र, 4. अविरत, सम्यग्दृष्टि, 5. देशविरत, 6. प्रमत्त संयत, 7. अप्रमत्त संयत, 8. अपूर्वकरण, 9. अनिवृत्तिकरण, 10. सूक्ष्म साम्पराय, 11. उपशांत मोह, 12. क्षीणमोह, 13. सयोग केवली जिन, 14. अयोग केवली जिन।

इस प्रकार इस लघु काय सूत्रानुसारी कृति में आचार्य भगवन् श्री अभय चन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने उक्त विषयों का वर्णन सरल सुबोध व सहज सुगम्य भाषा में किया है। प्रारंभिक अध्येता व विद्यार्थी बिना गुरु के सहयोग के या विशेष सहयोग के बिना भी इसमें स्वयं प्रवेश पा सकते हैं। संस्कृत भाषा का साधारण जानकार भव्य जीव भी इस कृति से जैन धर्म सिद्धांत की पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता है। प्रस्तुत कृति का भाषानुवाद विद्वतवर, सरस्वती पुत्र पं. गोकुलचन्द्र जी शास्त्री ने सन् 1963 में वी. नि. 2491 में किया है। जो कि बहुजन हिताय, बहु जन सुखाय, बहुजन बोधाय निमित्तक है। पं. जी का श्रम प्रशंसनीय व अनुग्राह्य है।

प्रस्तुत कृति के कर्ता आचार्य भगवन् अभय चन्द्र सूरि का विस्तृत परिचय कृति में नहीं है। कृति के अंत मात्र यही लिखा है।

"कृतिरियम् अभय चन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तिनः।"

यह कृति अभय चन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की है, फिर भी प्राप्त शिलालेखों व शास्त्रों के माध्यम से उनके बारे में निम्नलिखित जानकारी उपलब्ध हुई है–

अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के विषय में कई शिलालेखों से जानकारी मिलती है। मूल संघ, देशीय गण, पुस्तक गच्छ, कोण्डकुन्दान्वय की इंगलेश्वरी शाखा के श्रीसमुदाय में

माघनन्दि भट्टारक हुए। उनके नेमिचन्द्र भट्टारक तथा अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ये दो शिष्य थे। अभयचन्द्र बालचन्द्र पंडित के श्रुतगुरु थे।

हलेबीड के एक संस्कृत और कन्नड मिश्रित शिलालेख में अभयचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती के समाधिमरण का उल्लेख है। यह लेख शक संवत् 1201 व ईस्वी सन् 1279 का है। हलेबीड के ही एक अन्य शिलालेख में अभयचन्द्र के प्रिय शिष्य बालचन्द्र के समाधिमरण का उल्लेख है। यह लेख शक संवत् 1197, सन् 1274 ई. का है।

इन दोनों अभिलेखों से अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती का समय ईसा की तेरहवीं शती प्रमाणित होता है। वे सम्भवतया 13वीं शती के प्रारम्भ में हुए और 79 वर्ष तक जीवित रहे।

रावन्दूर के एक शिलालेख (शक 1306) में श्रुतमुनि को अभयचन्द्र का शिष्य बताया गया है।

भारंगी (मयूर पिच्छिका) के एक शिलालेख में कहा गया है कि राय राजगुरु मण्डलाचार्य महावाद वादीश्वर रायवादि पितामह अभयचन्द्र सिद्धान्त देव का पुराना (ज्येष्ठ) शिष्य बुल्ल गौड़ था, जिसका पुत्र गोप गौड़ नागर खण्डका शासक था। नागर खण्ड कर्णाटक देश में था।

बुल्ल गौड़ के समाधिमरण का उल्लेख भारंगी के एक अन्य शिलालेख में है, जिसमें कहा गया है कि बुल्ल या बुल्लुप को यह अवसर अभयचन्द्र की कृपा से प्राप्त हुआ था।

हुम्मच के एक शिलालेख में अभयचन्द्र को चैत्यवासी कहा गया है।

अभयचन्द्र के समाधिमरण से सम्बन्धि उपर्युक्त शिलालेख में कहा गया है कि वह छन्द, न्याय, निघण्टु, शब्द, समय, अलंकार, भूचक्र, प्रमाणशास्त्र आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसी तरह श्रुतमुनि ने परमागमसार (1263 शक) के अन्त में अपना परिचय देते हुए लिखा है–

"सद्दागम-परमागम-तक्कागम-णिरवसेसवेदी हु।
विजिद-सयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरि-सिद्धंती॥"

इससे भी अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ ऐलकजी. युगल क्षुल्लक जी तथा सभी त्यागी व्रती महानुभावों को सुसमाधिरस्तु शुभाशीर्वाद, काँधला निवासी पुण्यार्जक सुधी द्वय श्रावकों को धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ (छद्मस्थ) श्रमण पाठक द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हो तो अभेद रत्नत्रयधारी, महामनीषी, दिगम्बर संत, क्षमा भाव धारण कर आगामी प्रकाशन में संशोधन हेतु सुझाव-निर्देश देने का अनुग्रह करें। सुधी पाठक महोदय प्रस्तुत ग्रंथराज का विनयपूर्वक हंसवत्-गुणग्राही दृष्टि बनाकर आद्योपांत स्वाध्याय करें एवं कण्ठस्थ करें।

इत्यलम्

श्री शुभमिती फा.सु. 5
वी.नि. 2060 वि. 2530

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः निर्ग्रंथ पाठकः
जिन चारणानुचरः संयमानुरक्तः
26 फरवरी, 2004 (काँधला)
मुजफ्फर नगर (उत्तर प्रदेश)

आभार

.....जन–जन के कल्याण में समर्थ पूज्य आचार्य भगवंतो द्वारा सृजित महान ग्रंथों जिनमें श्रुत विद्या का असीम दिग्दर्शन होता है ऐसे सत् साहित्य के संरक्षण एवं संवर्धन में आपके द्वारा समर्पित अमूल्य योगदान का **निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला** हार्दिक अभिनन्दन करती है।

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

पुण्यार्जक श्रावक

उषा जैन

देवेन्द्र जैन

श्रीमती उषा जैन
धर्मपत्नी श्री देवेन्द्र कुमार जैन
कांधला मुजफ्फर नगर

कुसुम जैन

सुरेन्द्र जैन

श्रीमती कुसुम जैन
धर्मपत्नी श्री सुरेन्द्र कुमार जैन
कांधला मुजफ्फर नगर

अशोक जैन

श्री अशोक कुमार जैन
सुपुत्र श्री जयप्रकाश जैन
कांधला मुजफ्फर नगर

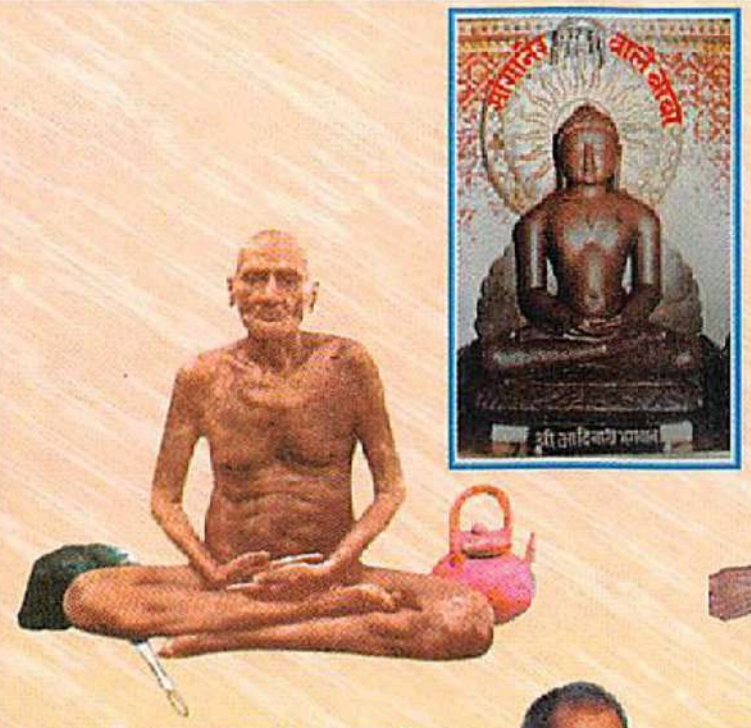

पo पू० चक्रवर्ती आचार्य
श्री १०८ शांतिसागर जी महाराज

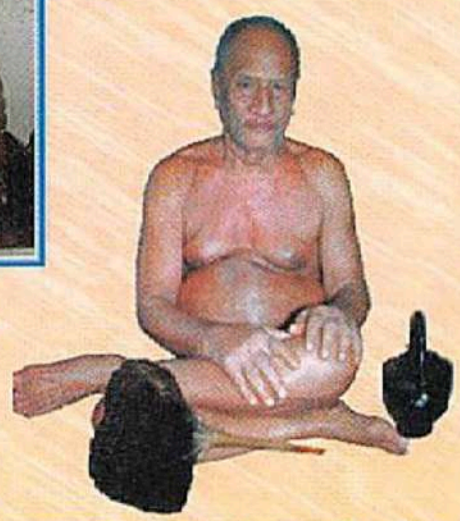

पo पू० राष्ट्र संत सि० च० दि० जैनाचार्य
श्री १०८ विद्यानंद जी महाराज

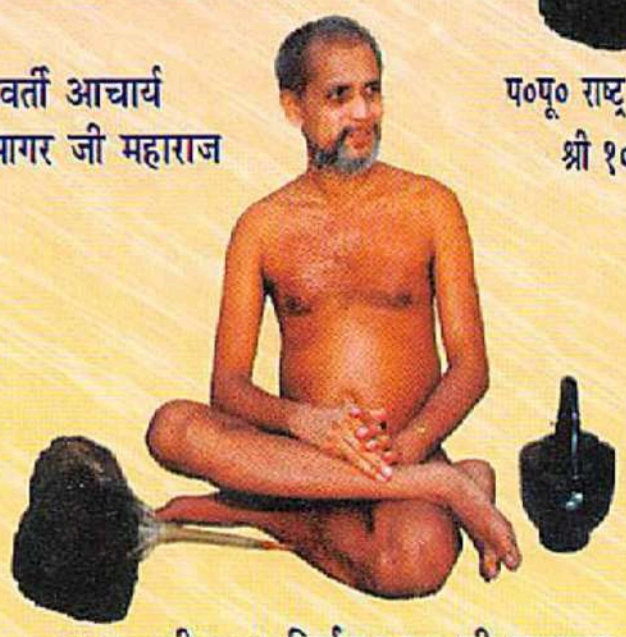

पo पू० श्री १०८ निर्णय सागर जी महाराज

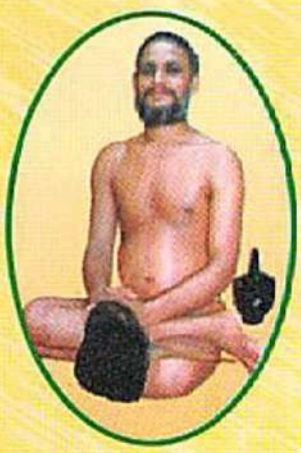

ऐलक श्री विमुक्त सागर जी महाराज

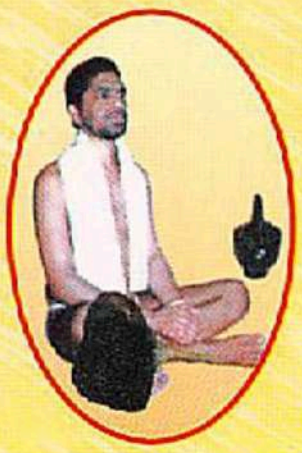

क्षुल्लक विशंक सागर जी

क्षुल्लक नित्यानन्द सागर जी

श्रीमद्-अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिता

कर्म प्रकृतिः

[मङ्गलाचरणम्]

प्रक्षीणावरणद्वैतमोहप्रत्यूहकर्मणे।

अनन्तानन्तधीर्दृष्टिसुखवीर्यात्मने नमः॥

[1. कर्मणः त्रैविध्यम्]

आत्मनः प्रदेशेषु बद्धं कर्म द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म चेति त्रिविधम्।

[2. द्रव्यकर्मणः चातुर्विध्यम्]

तत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन द्रव्यकर्म चतुर्विधम्।

प्रकृतिबन्धः

[3. प्रकृतेः स्वरूपम्]

तत्र ज्ञानप्रच्छादनादिस्वभावः प्रकृतिः।

[4. प्रकृतेः त्रैविध्यम्]

सा मूलप्रकृतिरुत्तरप्रकृतिरुत्तरोत्तरप्रकृतिरिति त्रिधा।

मंगलाचरण

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाति कर्मों को नाश करके अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन आत्मीय गुणों को प्राप्त करने वाले आत्मा (परमात्मा) के लिए नमस्कार है।

1. कर्म के तीन भेद

आत्मा के प्रदेशों में बद्ध कर्म तीन प्रकार का है–1. द्रव्यकर्म, 2. भावकर्म और 3.नोकर्म।

2. द्रव्यकर्म के भेद

द्रव्यकर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश के भेद से चार तरह का है।

3. प्रकृति का स्वरूप

ज्ञान को ढँकना आदि स्वभाव प्रकृति है।

4. प्रकृति के भेद

वह मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति, इस तरह तीन प्रकार की है।

मूलप्रकृतयः

[5. मूलप्रकृतेरष्ट भेदाः]

तत्र ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुष्यं नाम गोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतिरष्टधा।

[6. ज्ञानावरणीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

तत्रात्मनो ज्ञानं विशेषग्रहणमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं श्लक्ष्णकाण्डपटवत्।

[7. दर्शनावरणीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

दर्शनं सामान्यग्रहणमावृणोतीति दर्शनावरणीयं प्रतिहारवत्।

[8. वेदनीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

सुखं दुःखं वा इन्द्रियद्वारैर्वेदयतीति वेदनीयं गुडलिप्तखड्गधारावत्।

[9. मोहनीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

आत्मानं मोहयतीति मोहनीयं मद्यवत्।

[10. आयुषः लक्षणम् उदाहरणं च]

शरीर आत्मानमेति धारयतीत्यायुष्यंशृङ्खलावत्।

---

5. मूल प्रकृति के आठ भेद

उनमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ मूल प्रकृति के भेद हैं।

6. ज्ञानावरणीय का लक्षण और उदाहरण

उक्त आठ भेदों में पतले रेशमी वस्त्र की तरह जो आत्मा के विशेष ग्रहण रूप ज्ञानगुण को ढाँकता है, वह ज्ञानावरणीय है।

7. दर्शनावरणीय का लक्षण और उदाहरण

प्रतिहार की तरह जो आत्मा के सामान्यग्रहण रूप दर्शन के गुण को रोकता है, वह दर्शनावरणीय है।

8. वेदनीय का लक्षण और उदाहरण

गुड़-लपेटी तलवार की धार के समान जो सुख अथवा दुःख को इन्द्रियों के द्वारा अनुभव कराये, वह वेदनीय है।

9. मोहनीय का लक्षण और उदाहरण

शराब की तरह जो आत्मा को मोहित करे, वह मोहनीय है।

[11. नामकर्मणः लक्षणम् उदाहरणं च]

नानायोनिषु नारकादिपर्यायैरात्मानं नमयति-शब्दयतीति नाम चित्रकारवत्।

[12. गोत्रस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

उच्चनीचकुलत्वेनात्मा गूयत इति गोत्रं कुम्भकारवत्।

[13. अन्तरायस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

दानादिविघ्नं कर्तुमन्तरं दातृपात्रादीनां मध्यमेतीत्यन्तरायो भाण्डारिकवत्।

उत्तरप्रकृतयः

[14. उत्तर प्रकृतिनां भेदाः]

उत्तरप्रकृतयोष्टचत्वारिंशदुत्तरशतम्। तद्यथा–

ज्ञानावरणीयम्

[15. ज्ञानावरणीयस्य पंच प्रकृतयः]

मतिज्ञानावरणीयं श्रुतज्ञानावरणीयमवधिज्ञानावरणीयं मनःपर्ययज्ञानावरणीयं केवलज्ञानावरणीयं चेति ज्ञानावरणीयस्य प्रकृतयः पञ्च।

---

10. आयु का लक्षण और उदाहरण

शृंखला की तरह जो शरीर में आत्मा को रोके रखता है, वह आयु कर्म है।

11. नाम कर्म का लक्षण और उदाहरण

चित्रकार की तरह जो आत्मा को नाना योनियों में नरकादि पर्यायों द्वारा नामांकित कराता है, वह नाम कर्म है।

12. गोत्र कर्म का लक्षण और उदाहरण

कुम्भकार की तरह जो आत्मा को उच्च अथवा नीच कुल के रूप में व्यवहृत कराता है, वह गोत्र कर्म है।

13. अन्तराय कर्म का लक्षण और उदाहरण

भण्डारी की तरह जो दाता और पात्र आदि के बीच में आकर आत्मा के दान आदि में विघ्न डालता है, वह अन्तराय कर्म है।

14. उत्तर प्रकृतियों के भेद

उत्तर प्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस हैं। वे इस प्रकार है–

15. ज्ञानावरणीय की पाँच प्रकृतियाँ

मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय तथा केवलज्ञानावरणीय, ये पाँच ज्ञानावरणीय की प्रकृतियाँ हैं।

[16. मतिज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

तत्र पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च मननं ज्ञानं मतिज्ञानं तदावृणोतीति मतिज्ञानावरणीयम्।

[17. श्रुतज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

मतिज्ञानगृहीतार्थादन्यस्यार्थस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानं तदावृणोतीति श्रुतज्ञानावरणीयम्।

[18. अवधिज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तसामान्यपुद्गलद्रव्यं तत्संबन्धिसंसारोजीवद्रव्याणि च देशान्तरस्थानि कालान्तरस्थानि च द्रव्यक्षेत्रकालभवभावानवधीकृत्य यत्प्रत्यक्षं जानातीत्यवधिज्ञानं तदावृणोतीत्यवधिज्ञानावरणीयम्।

[19. मनः पर्ययज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

परेषां मनसि वर्तमानमर्थं यज्जानाति तन्मनः पर्ययज्ञानं तदावृणोतीति मनः-पर्ययज्ञानावरणीयम्।

[20. केवलज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

इन्द्रियाणि प्रकाशं मनश्चानपेक्ष्य त्रिकालगोचरलोकसकलपदार्थानां युगपदवभासनं केवलज्ञानं तदावृणोतीति केवलज्ञानावरणीयम्।

---

16. मतिज्ञानावरणीय का लक्षण

पाँच इन्द्रियों तथा मन की सहायता से होने वाला मननरूप ज्ञान मतिज्ञान है, उसे जो ढँकता है वह मतिज्ञानावरणीय है।

17. श्रुतज्ञानावरणीय का लक्षण

मतिज्ञान-द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ से भिन्न अर्थ का ज्ञान श्रुतज्ञान है, उसे जो आवृत करता है वह श्रुतज्ञानावरणीय है।

18. अवधिज्ञानावरणीय का लक्षण

भिन्न देश तथा भिन्न काल में स्थित वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श युक्त सामान्य पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की मर्यादा लेकर प्रत्यक्ष जानता है, वह अवधिज्ञान कहलाता है, उसका आवरण करने वाला अवधिज्ञानावरणीय है।

19. मनःपर्ययज्ञानावरणीय का स्वरूप

दूसरों के मन में स्थित अर्थ को जो जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है, उसे जो रोकता है, वह मनःपर्ययज्ञानावरणीय है।

20. केवलज्ञानावरणीय का स्वरूप

इन्द्रिय, प्रकाश और मन की सहायता के बिना त्रिकाल गोचर लोक तथा अलोक के समस्त पदार्थों का एक साथ अवभास (ज्ञान) केवलज्ञान है, उसे जो आवृत करता है, वह केवलज्ञानावरणीय है।

दर्शनावरणीयम्

[21. दर्शनावरणीयस्य नव प्रकृतयः]

चक्षुर्दर्शनावरणीयमचक्षुर्दर्शनावरणीयमवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिरिति दर्शनावरणीयं नवधा।

[22. चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

तत्र चक्षुषा वस्तुसामान्यग्रहणं चक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम्।

[23. अचक्षुर्दर्शनावरदणीयस्य स्वरूपम्]

शेषैः स्पर्शनादीन्द्रियैर्मनसा च वस्तुसामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम्।

[24. अवधिदर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम्।

[25. केवलदर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

समस्तवस्तुसामान्यग्रहणं केवलदर्शनं तदावृणोतीति केवलदर्शनावरणीयम्।

[26. निद्रायाः स्वरूपम्]

यतो गच्छतः स्थानं तिष्ठत उपवेशनमुपविशतश्शयनं च भवति सा निद्रा।

---

21. दर्शनावरणीय के नव भेद

चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला तथा स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरणीय के भेद हैं।

22. चक्षुदर्शनावरणीय का स्वरूप

चक्षु द्वारा वस्तु का सामान्य ग्रहण चक्षुदर्शन कहलाता है, उसका आवरण चक्षुदर्शनावरणीय है।

23. अचक्षुदर्शनावरणीय का स्वरूप

चक्षु के अतिरिक्त शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियों तथा मन के द्वारा वस्तु का सामान्यग्रहण अचक्षुदर्शन है, उसका आवरण अचक्षुदर्शनावरणीय है।

24. अवधिदर्शनावरणीय का स्वरूप

रूपी पदार्थों का सामान्यग्रहण अवधिदर्शन है, उसका आवरण अवधिदर्शनावरणीय है।

25. केवलदर्शनावरणीय का स्वरूप

समस्त वस्तुओं का सामान्यग्रहण केवलदर्शन है, उसका आवरण केवलदर्शनावरणीय है।

26. निद्रा का स्वरूप

जिसके कारण चलते, किसी स्थान पर ठहरते, बिस्तर पर बैठते नींद आती है, उसे निद्रा कहते हैं।

[27. निद्रानिद्राया: स्वरूपम्]

उत्थापितेऽपि लोचनमुद्घाटयितुं न शक्नोति यतस्सा निद्रानिद्रा।

[28. प्रचलाया: स्वरूपम्]

यत ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोऽपीषदीषज्जानाति सा प्रचला।

[29. प्रचलाप्रचलाया: स्वरूपम्]

यतो निद्रायमाणे लाला वहत्यङ्गानि चलन्ति सा प्रचलाप्रचला।

[30. स्त्यानगृद्धे: स्वरूपम्]

यत उत्थापितेऽपि पुनः पुनः स्वपिति निद्रायमाणे चोत्थाय कर्माणि करोति स्वप्नायते जल्पति च सा स्त्यानगृद्धिः।

वेदनीयम्

[31. वेदनीयस्य द्वे प्रकृतय:]

सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति वेदनीयं द्विधा।

[32. सातावेदनयीस्य स्वरूपम्]

तत्रेन्द्रियसुखकारणचन्दनकर्पूरस्रग्वनितादिविषयप्राप्तिकारणं सातावेदनीयम्।

---

27. निद्रानिद्रा का स्वरूप

जिसके कारण उठाये जाने (जगाये जाने) पर भी आँखें न खुल सकें, उसे निद्रानिद्रा कहते हैं।

28. प्रचला का स्वरूप

जिसके कारण कुछ आँख खोलकर सोये तथा सोते हुए भी कुछ-कुछ जानता रहे, उसे प्रचला कहते हैं।

29. प्रचलाप्रचला का स्वरूप

जिसके कारण सोते हुए लार बहे तथा अंग चलें, उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

30. स्त्यानगृद्धि का स्वरूप

जिसके कारण उठा देने पर भी फिर-फिर सो जायें, नींद में उठकर कार्य करे, स्वप्न देखे, बड़बड़ाये, उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं।

31. वेदनीय के दो भेद

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो वेदनीय के भेद हैं।

32. सातावेदनीय का स्वरूप

इन्द्रिय-सुख के कारण चन्दन, कर्पूर, माला, वनिता आदि विषयों की प्राप्ति जिससे हो, वह सातावेदनीय है।

[33. असातावेदनीयस्य स्वरूपम्]

इन्द्रियदुःखकारणविषशस्त्राग्निकण्टकादिद्रव्यप्राप्तिनिमित्तमसातावेदनीयम्।

मोहनीयम्

[34. मोहनीयस्य द्वौ भेदौ]

दर्शनमोहनीयं चरित्रमोहनीयं चेति मोहनीयं द्विधा।

[35. दर्शनमोहनीयस्य त्रयः भेदाः]

तत्र मिथ्यात्वं सम्यङ्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति दर्शनमोहनीयं त्रिधा।

[36. मिथ्यात्वस्य स्वरूपम्]

तत्रातत्त्वश्रद्धानकारणं मिथ्यात्वम्।

[37. सम्यग्मिथ्यात्वस्य स्वरूपम्]

तत्त्वातत्त्वश्रद्धानकारणं सम्यङ्मिथ्यात्वम्।

[38. सम्यक्त्वप्रकृतेः स्वरूपम्]

तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं चलमलिनमगाढं करोति यत्सा सम्यक्त्वप्रकृतिः।

---

33. असातावेदनीय का स्वरूप

इन्द्रिय-दुःख के कारण विष, शस्त्र, अग्नि, कंटक आदि द्रव्यों की प्राप्ति जिसके द्वारा हो, वह असातावेदनीय है।

34. मोहनीय के दो भेद

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय, ये दो मोहनीय के भेद हैं।

35. दर्शनमोहनीय के तीन भेद

उनमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन दर्शन मोहनीय के भेद हैं।

36. मिथ्यात्व का स्वरूप

उक्त तीन भेदों में मिथ्यात्व वह है, जिससे तत्व की श्रद्धा न होकर विपरीत श्रद्धा हो।

37. सम्यग्मिथ्यात्व का स्वरूप

जिससे तत्व तथा अतत्व दोनों का श्रद्धान हो वह सम्यग्मिथ्यात्व है।

38. सम्यक्त्वप्रकृति का स्वरूप

जो तत्त्वार्थ की श्रद्धा रूप सम्यग्दर्शन में चल, मलिन तथा अगाढ़ दोष उत्पन्न करे, वह सम्यक्त्वप्रकृति है।

[39. चारित्रमोहनीयस्य द्वौ भेदौ]

कषायनोकषायभेदाच्चारित्रमोहनीयं द्विधा।

[40. कषायाणां भेदाः]

तत्रानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पतः प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति कषायाः षोडश।

[41. अनन्तानुबन्धिकषायाणां कार्यम्]

तत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाः सम्यग्दर्शनं विराधयन्ति।

[42. अप्रत्याख्यानकषायाणां कार्यम्]

अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा देशसंयमं प्रतिबध्नन्ति।

[43. प्रत्याख्यानकषायाणां कार्यम्]

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभासकलसंयमं प्रतिबध्नन्ति।

[44. संज्वलनकषायाणां कार्यम्]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभा यथाख्यातचारित्रं निवारयन्ति।

---

39. चारित्रमोहनीय के भेद

कषाय और नोकषाय भेद से चारित्रमोहनीय दो प्रकार का है।

40. कषाय के भेद

उनमें अनन्तानुबन्धि, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन के विकल्प से कषाय चार प्रकार की है और प्रत्येक के क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये चार-चार भेद हैं। इस प्रकार कषाय के सोलह भेद हैं।

41. अनन्तानुबन्धि कषायों का कार्य

अनन्तानुबन्धि, क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यग्दर्शन का घात करते हैं—उसे वे प्रकट नहीं होने देते।

42. अप्रत्याख्यानावरण कषायों का कार्य

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ देशसंयम को रोकते हैं।

43. प्रत्याख्यानावरण कषायों का कार्य

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ सकलचारित्र को रोकते हैं।

44. संज्वलन कषायों का कार्य

संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ यथाख्यात चारित्र को नहीं होने देते हैं।

[45. अनन्तानुबन्धिकषायाणां शक्त्यः]

तत्रानन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं शिलाभेदशिलास्तम्भवेणुमूल-क्रिमिरागकम्बलसदृशास्तीव्रतमशक्तयः।

[46. अप्रत्याख्यानकषायाणां शक्त्यः]

अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं भूभेदास्थि-अविशृङ्गचक्रमलसदृशास्ती-व्रतरशक्तयः।

[47. प्रत्याख्यानकषायाणां शक्त्यः]

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं धूलिरेखाकाष्ठगोमूत्रतनुमलसदृशास्ती-व्रशक्तयः।

[48. संज्वलनकषायाणां शक्त्यः]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं जलरेखावेत्रक्षुरप्रहरिद्रारागसदृशा मन्दशक्तयः।

[49. हास्यप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो हासो भवति तद्धास्यम्।

[50. रतिप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो रमयति सा रतिः।

---

45. अनन्तानुबन्धि कषायों की शक्ति

अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्रम से शिलाखण्ड, शिलास्तम्भ, वेणुमूल (बाँस की जड़) और क्रिमिराग कम्बल की तरह तीव्रतम शक्तिवाली होती है।

46. अप्रत्याख्यानावरण कषायों की शक्ति

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्रम से पृथ्वीखण्ड, हड्डी, मेढे के सींग तथा चक्रमल (ओंगन) के सदृश तीव्रतर शक्तिवाली होती हैं।

47. प्रत्याख्यानावरण कषायों की शक्ति

प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ क्रम से धूलिरेखा, काष्ठ, गोमूत्र, शरीर के मल के सदृश तीव्र शक्ति वाली होती हैं।

48. संज्वलन कषायों की शक्ति

संज्वलन क्रोध, मान, माया तथा लोभ क्रम से जलरेखा, बेंत, खुरपा तथा हल्दी के रंग के सदृश मन्द शक्तिवाली होती हैं।

49. हास्य प्रकृति का लक्षण

जिससे हँसी आये, वह हास्य प्रकृति है।

50. रति का लक्षण

जिसके कारण रमे (प्रसन्न हो), वह रति है।

[51. अरतिप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो विषण्णो भवति सारतिः।

[52. शोकप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतः शोचयति रोदयति स शोकः।

[53. भयप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो बिभेत्यनर्थात्तद्भयम्।

[54. जुगुप्साप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो जुगुप्सा सा जुगुप्सा।

[55. स्त्रीवेदस्य लक्षणम्]

यतः स्त्रियमात्मानं मन्यमानः पुरुषे वेदयति रन्तुमिच्छति सः स्त्रीवेदः।

[56. पुवेदस्य लक्षणम्]

यतः पुमांसमात्मानं मन्यमानः स्त्रियांवेदयति रन्तुमिच्छति सः पुंवेदः।

[57. नपुंसकवेदस्य लक्षणम्]

यतो नपुंसकमात्मानं मन्यमानः स्त्रीपुंसोर्वेदयति रन्तुमिच्छति स नपुंसकवेदः।

---

51. अरति का लक्षण

जिसके कारण विषण्ण हो, वह अरति है।

52. शोक का लक्षण

जिसके कारण शोक करे, वह शोक है।

53. भय का लक्षण

जिसके कारण अनर्थ से डरे, वह भय है।

54. जुगुप्सा का लक्षण

जिसके कारण घृणा आये, वह जुगुप्सा है।

55. स्त्रीवेद का लक्षण

जिसके कारण अपने को स्त्री मानता हुआ पुरुष में रमण करने की इच्छा करता है, वह स्त्री वेद है।

56. पुँवेद का लक्षण

जिसके कारण अपने को पुरुष मानता हुआ स्त्री में रमण करने की इच्छा करता है, वह पुँवेद है।

57. नपुँसकवेद का लक्षण

जिसके कारण अपने को नपुँसक मानता हुआ स्त्री और पुरुष दोनों में रमण करने की इच्छा करता है, वह नपुँसकवेद है।

आयुः

[58. आयुष्कर्मणः चत्वारः प्रकृतयः]

नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यं मनुष्यायुष्यं देवायुष्यं चेत्यायुश्चतुर्विधम्।

[59. नरकायुषा लक्षणम्]

तत्र यन्नारकशरीरे आत्मानं धारयति तन्नारकायुष्यम्।

[60. तिर्यगायुषो लक्षणम्]

यत्तिर्यक्छरीरे जीवं धारयति तत्तिर्यगायुष्यम्।

[61. मनुष्यायुषो लक्षणम्]

यन्मनुष्यशरीरे प्राणिनं धारयति तन्मनुष्यायुष्यम्।

[62. देवायुषो लक्षणम्]

यद्देवशरीरे देहिनं धारयति तद्देवायुष्यम्।

नाम

[63. नामकर्मणः द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः]

गतिजातिशरीरबन्धनसंघातसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्द्योतोच्छ्वास विहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापप्रत्येकशरीरसाधारणशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्ति-निर्माणतीर्थंकरत्वानीतिपिण्डापिण्डरूपा नामकर्मप्रकृतयो द्वाचत्वारिंशत्।

---

58. आयुकर्म के चार भेद

नारकायुष्य, तिर्यगायुष्य, मनुष्यायुष्य और देवायुष्य इस प्रकार आयु के चार भेद हैं।

59. नरकायुष्य का लक्षण

जो आत्मा को नारक शरीर में धारण कराता है, वह नरकायुष्य है।

60. तिर्यगायुष्य का लक्षण

जो जीव को तिर्यंच-शरीर में धारण कराता है, वह तिर्यगायुष्य है।

61. मनुष्यायुष्य का लक्षण

जो प्राणी को मनुष्य-शरीर में धारण कराता है, वह मनुष्यायुष्य है।

62. देवायुष्य का लक्षण

जो प्राणी को देव-शरीर में धारण कराता है, वह देवायुष्य है।

63. नामकर्म की बयालीस प्रकृतियाँ

गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्व, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति निर्माण तथा तीर्थंकरत्व ये नामकर्म की पिण्ड-अपिण्डरूप बयालीस प्रकृतियाँ हैं।

[64. नामकर्मणः पिण्डप्रकृतीनां त्रयोनवतिः भेदाः]

पिण्डप्रकृतीनां भेदे तु सर्वा नामप्रकृतयस्त्रयोनवतिः।

[65. गतिनामकर्मणः चत्वारः भेदाः]

नारकतिर्यङ् मनुष्यदेवगतिभेदाद् गतिनाम चतुर्धा।

[66. नरकगतेर्लक्षणम्]

यतो जीवस्य नारकपर्यायो भवति सा नरकगतिः।

[67. तिर्यग्गतेर्लक्षणम्]

यतस्तिर्यक्पर्यायो भवति प्राणिनः सा तिर्यग्गतिः।

[68. मनुष्यगतेर्लक्षणम्]

यतो मनुष्यपर्याय आत्मनो भवति सा मनुष्यगतिः।

[69. देवगतेर्लक्षणम्]

यतो देवपर्यायो देहिनो भवति सा देवगतिः।

[70. गतेः सामान्यलक्षणम्]

नारकादिभवप्राप्तिर्गमनहेतुर्वा गतिनामा।

---

64. नाम कर्म की तिरानवे प्रकृतियाँ

पिण्डप्रकृतियों के भेद करने पर नामकर्म की सब प्रकृतियाँ तिरानवें होती हैं।

65. गति नाम कर्म के चार भेद

नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति के भेद से गति नाम कर्म के चार भेद हैं।

66. नरकगति का लक्षण

जिसके कारण जीव की नारकपर्याय होती है, वह नरकगति है।

67. तिर्यग्गति का लक्षण

जिसके कारण जीव की तिर्यंच पर्याय होती है, वह तिर्यग्गति है।

68. मनुष्य गति का लक्षण

जिसके कारण आत्मा की मनुष्यपर्याय होती है, वह मनुष्यगति है।

69. देव गति का लक्षण

जिसके कारण प्राणी को देवपर्याय होती है, वह देवगति है।

70. गति नाम कर्म का सामान्य लक्षण

नारक आदि भवप्राप्ति के लिए गमन का कारण गति नाम कर्म है।

[71. जातिनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

एकद्वित्रिचतुः पंचेन्द्रियभेदाज्जातिनाम पञ्चधा।

[72. एकेन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्र स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति यतः सा एकेन्द्रियजातिः।

[73. द्वीन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा द्वीन्द्रियजातिः।

[74. त्रीन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा त्रीन्द्रियजातिः।

[75. चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुष्मन्तो जीवा भवन्ति सा चतुरिन्द्रियजातिः।

[76. पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा पञ्चेन्द्रियजातिः।

[77. शरीरनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानीति शरीरनाम पञ्चधा।

---

71. जाति नाम कर्म के पाँच भेद

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय के भेद से जाति नाम कर्म के पाँच भेद हैं।

72. एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन इन्द्रियवान् होता है, वह एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

73. द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन और रसना इन्द्रिय युक्त होता है, वह द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

74. त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन्द्रिय युक्त होता है, वह त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

75. चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु युक्त होता है, वह चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

76. पंचेन्द्रियजाति नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रिय युक्त होता है, वह पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

[78. औदारिकशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्र यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा औदारिकशरीरकरणे परिणमन्ति तदौदारिकशरीरनाम।

[79. वैक्रियकशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा वैक्रियकशरीररूपेण परिणमन्ति तद्वैक्रियकशरीरनाम।

[80. आहारकशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा आहारकशरीर रूपेण परिणमन्ति तदाहारकशरीरनाम।

[81. तैजसशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

यतस्तैजसवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धास्तैजसशरीररूपेण परिणमन्ति तत्तैजसशरीरनाम।

[82. कार्मणशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

कार्मणवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धाः कार्मणशरीररूपेण परिणमन्ति यतस्तत्कार्मण-शरीरनाम।

---

77. शरीर नाम कर्म के पाँच भेद

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण, ये शरीर नाम कर्म के पाँच भेद हैं।

78. औदारिक शरीर नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध औदारिक शरीर के रूप में परिणत होते हैं, वह औदारिक शरीर नाम कर्म है।

79. वैक्रियक शरीर नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध वैक्रियक शरीर के रूप में परिणत होते हैं, वह वैक्रियक शरीर नाम कर्म है।

80. आहारक शरीर नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध आहारक शरीर रूप से परिणत होते हैं, उसे आहारक शरीर नाम कर्म कहते हैं।

81. तैजस शरीर नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण तैजस वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध तैजस शरीर रूप से परिणत होते हैं, वह तैजस शरीर नाम कर्म है।

82. कार्मण शरीर नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण कार्मण वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध कार्मण शरीर रूप परिणत होते हैं, वह कार्मण शरीर नाम कर्म है।

[83. बन्धननामकर्मणः पञ्च भेदाः]

औदारिकादिशरीरपञ्चकाश्रितं बन्धननाम पञ्चधा।

[84. औदारिकशरीरबन्धननामकर्मणः लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपुद्गलानां परस्परसंश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तदौदारिकशरीरबन्धननाम।

[85. वैक्रियकादिशरीरबन्धननामकर्मणां लक्षणानि]

एवं वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीराकारेण परिणतपुद्गलानां परस्परसंश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तानि वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीरबन्धननामानि ज्ञातव्यानि।

[86. संघातनामकर्मणः पञ्चः भेदाः]

औदारिकादिशरीरपञ्चकाश्रितानि संघातनामानि पञ्च।

[87. औदारिकशरीरसंघातनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलानां तदाकारवैषम्याभाव-कारणमौदारिकशरीरसंघातनामकर्म।

[88. वैक्रियकादिशरीरसंघातनामकर्मणः लक्षणम्]

एवं वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीररूपेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलस्कन्धानां तत्तदाकारवैषम्याभावकारणानि वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंघातनामानि ज्ञातव्यानि।

---

83. बन्धन नाम कर्म के पाँच भेद

औदारिक आदि पाँच शरीरों के आश्रित बन्धन नाम कर्म पाँच प्रकार का है।

84. औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म का लक्षण

जिसके कारण औदारिक शरीर के आकार रूप से परिणत पुद्गलों का परस्पर संश्लेष रूप बन्ध होता है, वह औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म है।

85. वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म

इसी प्रकार जिस कारण वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर के आकार रूप से परिणत पुद्गलों का परस्पर संश्लेष रूप बन्ध होता है, उन्हें क्रमशः वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म कहते हैं।

86. संघात नाम कर्म के पाँच भेद

औदारिक आदि पाँच शरीरों के आश्रित संघात नाम कर्म पाँच प्रकार का होता है।

87. औदारिक शरीर संघात नाम कर्म का लक्षण

औदारिक शरीर के आकार रूप से परिणत परस्पर बद्ध पुद्गलों के तदाकार वैषम्य के अभाव का कारण औदारिक शरीर संघात नाम कर्म है।

88. वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर, संघात नाम कर्म का लक्षण

इसी प्रकार वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर रूप से परिणत, परस्पर बद्ध पुद्गल स्कन्धों के उस-उस आकार की विषमता के अभाव का कारण वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर संघात नाम कर्म है।

[89. संस्थाननामकर्मणः षड्भेदाः]

समचतुरस्रन्यग्रोधस्वातिकुब्जवामनहुण्डकभेदात्संस्थाननाम षोढा।

[90. समचतुरस्रसंस्थानस्य लक्षणम्]

तत्र यतः सर्वत्र दशतालल्क्षणलक्षितप्रशस्तसंस्थानशरीराकारो भवति तत्समचतुस्त्र-संस्थानं नाम।

[91. न्यग्रोधसंस्थानस्य लक्षणम्]

यत उपरि विस्तीर्णोऽधः संकुचितशरीराकारो भवति तन्न्यग्रोधसंस्थानं नाम।

[92. स्वातिसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतोऽधो विस्तीर्णं उपरि संकुचितशरीराकारो भवति तत्स्वातिसंस्थानं नाम। स्वातिर्वल्मीकं तत्सादृश्यात्।

[93. कुब्जसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतो ह्रस्वः शरीराकारो भवति तत्कुब्जसंस्थानं नाम।

[94. वामनसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतो दीर्घहस्तपादा ह्रस्वकबन्धश्च शरीराकारो भवति तद्वामनसंस्थानं नाम।

---

89. संस्थान नाम कर्म के छह भेद

समचतुरस्र, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्ज, वामन और हुण्डक, ये संस्थान नाम कर्म के छह भेद हैं।

90. समचतुरस्र संस्थान का लक्षण

जिससे सब जगह दशताल लक्षणयुक्त प्रशस्त संस्थान सहित शरीर का आकार होता है, वह समचतुरस्र संस्थान है।

91. न्यग्रोध संस्थान का लक्षण

जिसके कारण ऊपर विस्तीर्ण तथा नीचे संकुचित शरीराकार होता है, वह न्यग्रोध संस्थान है।

92. स्वाति संस्थान का लक्षण

जिसके कारण नीचे विस्तीर्ण तथा ऊपर संकुचित शरीर का आकार होता है, वह वल्मीक (वांमी) सदृश होने के कारण स्वातिसंस्थान कहलाता है।

93. कुब्ज संस्थान का लक्षण

जिसके कारण शरीर का आकार छोटा (कुबड़ा) होता है, वह कुब्जक संस्थान नाम कर्म है।

94. वामन संस्थान का लक्षण

जिसके कारण हाथ और पैर लम्बे तथा कबन्ध (धड़) छोटा होता है, उसे वामन संस्थान कहते हैं।

[95. हुण्डकसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतः पाषाणपूर्णगोणिवत् ग्रन्थ्यादिविषमशरीराकारो भवति तद् हुण्डकसंस्थानं नाम।

[96. अङ्गोपाङ्गनामकर्मणस्त्रयो भेदाः]

औदारिकवैक्रियकाहारकशरीरभेदादङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा।

[97. औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गस्य लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीरस्य चरणद्वयबाहुद्वयनितम्बपृष्ठवक्षःशीर्षभेदादष्टाङ्गानि, अङ्गुली-कर्णनासिकाद्युपाङ्गानि करोति यत्तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम।

[98. वैक्रियकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गयोर्लक्षणे]

एवं वैक्रियकाहारकशरीरयोरपि तदङ्गोपाङ्गकारकं वैक्रियकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामद्वयं ज्ञातव्यम्।

[99. संहननानामकर्मणः षड् भेदाः]

वज्रवृषभनाराचसंहननवज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकाभेदतः संहननं नाम षोढा।

[100. वज्रवृषभनाराचसंहननस्य लक्षणम्]

तत्र वज्रवत् स्थिरास्थिऋषभो वेष्टनं वज्रवत् वेष्टनकीलकबन्धो यतो भवति तद्वज्रवृषभनाराचसंहननं नाम।

---

95. हुण्डक संस्थान का लक्षण

जिसके कारण पत्थर भरी हुई गौन की तरह, ग्रन्थि आदि से युक्त विषम शरीराकार होता है, उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

96. अंगोपांग नाम कर्म के भेद

औदारिक, वैक्रियक और आहारक, ये अंगोपांग नाम कर्म के तीन भेद हैं।

97. औदारिक शरीर अंगोपांग का लक्षण

औदारिक शरीर के दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, वक्षस्थल तथा शीर्ष ये आठ अंग और अंगुली, कर्ण, नासिका आदि उपांग जिसके कारण होते हैं, उसे औदारिक शरीर अंगोपांग कहते हैं।

98. वैक्रियक तथा आहारक शरीर अंगोपांग का लक्षण

इसी तरह जिनके कारण वैक्रियक तथा आहारक शरीर के अंगोपांग होते हैं, उन्हें क्रमशः वैक्रियक तथा आहारक शरीर अंगोपांग कहते हैं।

99. संहनन नाम कर्म के छह भेद

वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन तथा असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, ये संहनन नाम कर्म के छह भेद हैं।

[101. वज्रनाराचसंहननस्य लक्षणम्]

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिकीलकबन्धसामान्यवेष्टनं च भवति तद्वज्रनाराचसंहननम्।

[102. नाराचसंहननस्य लक्षणम्]

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिबन्धसामान्यकीलिकावेष्टनमेतद्द्वयं भवति तन्नाराचसंहननं नाम।

[103. अर्धनाराचसंहननस्य लक्षणम्]

यतस्सामान्यास्थिबन्धार्धकीलिका भवति तदर्धनाराचसंहननं नाम।

[104. कीलितसंहननस्य लक्षणम्]

यतः कीलित इव सामान्यास्थिबन्धो भवति तत्कीलितसंहननं नाम।

[105. असंप्राप्तसृपाटिकासंहननस्य लक्षणम्]

यतः परस्परासंबद्धास्थिबन्धो भवति तदसंप्राप्तसृपाटिकासंहननं नाम।

[106. वर्णनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

श्वेतपीतहरितारुणकृष्णभेदाद् वर्णनाम पञ्चधा।

---

100. वज्रवृषभनाराच संहनन का लक्षण

जिसके कारण वज्र की तरह स्थिर अस्थि और वृषभ वेष्टन तथा वज्र की तरह वेष्टन और कीलक बन्ध होता है, उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं।

101. वज्रनाराच संहनन का लक्षण

जिसके कारण वज्र की तरह स्थिर अस्थि तथा कीलक बन्ध होता है तथा वेष्टन सामान्य होता हैं। उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं।

102. नाराच संहनन का लक्षण

जिसके कारण वज्र की तरह स्थिर अस्थिबन्ध तथा सामान्य कीलक और वेष्टन होते हैं, उसे नाराच संहनन कहते हैं।

103. अर्धनाराच संहनन का लक्षण

जिसके कारण सामान्य अस्थिबन्ध अर्ध कीलित होता है, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं।

104. कीलित संहनन का लक्षण

जिसके कारण कीलित की तरह सामान्य अस्थिबन्ध होता है, वह कीलित संहनन है।

105. असंप्राप्तसृपाटिका संहनन का लक्षण

जिसके कारण अस्थिबन्ध परस्पर असम्बद्ध होता है, उसे असम्प्राप्तसृपाटिका संहनन कहते हैं।

[107. वर्णनामकर्मणः सामान्यलक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां श्वेतादिवर्णान्यत्करोति तद्वर्णनाम।

[108. गन्धनामकर्मणः द्वौ भेदौ]

सुगन्धदुर्गन्धभेदाद् गन्धनाम द्वेधा।

[109. गन्धनामकर्मणः लक्षणम्]

स्वस्वशरीराणां स्वस्वगन्धं करोति यत्तद् गन्धनाम।

[110. रसनामकर्मणः पंच भेदाः]

तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदाद्रसनाम पञ्चधा।

[111. रसनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां यत्स्वस्वरसं करोति तद्रसनाम।

[112. लवणो नाम षष्ठो रसः न पृथक्]

लवणो नाम रसो लौकिकैः षष्ठोऽस्ति। स मधुररसभेद एवेति परमागमे पृथक्त्वेन नोक्तः, लवणं विना इतररसानां स्वादुत्वाभावात्।

---

106. वर्ण नाम के पाँच भेद

श्वेत, पीत, हरित, अरुण तथा कृष्ण के भेद से वर्ण नाम पाँच प्रकार का है।

107. वर्ण नाम कर्म का सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीर का श्वेत आदि वर्ण जिसके कारण होता है, उसे वर्ण नाम कहते हैं।

108. गन्ध नाम के दो भेद

सुगन्ध और दुर्गन्ध के भेद से गन्ध नाम दो प्रकार का है।

109. गन्ध नाम कर्म का सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीर की गन्ध जिस कारण होती है, उसे गन्ध नाम कहते हैं।

110. रस नाम के पाँच भेद

तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल तथा मधुर के भेद से रस नाम कर्म के पाँच भेद हैं।

111. रस नाम कर्म का सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीर का जो अपना-अपना रस करता है, उसे रस नाम कर्म कहते हैं।

112. लवण नामक छठा रस

लवण नामक छठा रस लोक में माना जाता है। यह मधुर रसका ही भेद है, इसलिए परमागम में अलग से नहीं कहा; क्योंकि नमक के बिना तो अन्य सभी रस फीके हैं।

[113. स्पर्शनामकर्मणः अष्टभेदाः]

मृदुकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात्स्पर्शननामाष्टकम्।

[114. स्पर्शनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां स्वस्वस्पर्शं करोति।

[115. आनुपूर्विनामकर्मणः चत्वारो भेदाः]

नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगत्यानुपूर्विभेदादानुपूर्विनाम चतुर्धा।

[116. आनुपूर्विनामकर्मणः लक्षणम्]

स्वस्वगतिगमने विग्रहतो त्यक्तपूर्वशरीराकारं करोति।

[117. अगुरुलघुनामकर्मणः लक्षणम्]

अगुरुलघुनाम स्वस्वशरीरं गुरुत्वलघुत्ववर्जितं करोति।

[118. उपघातनामकर्मणः लक्षणम्]

उपघातनाम स्वबाधाकारकं तुन्दादिशरीरावयवं करोति।

[119. परघातनामकर्मणः लक्षण्म्]

परघातनाम परबाधाकारकं सर्पदंष्ट्रशृङ्गादिशरीरावयवं करोति।

---

113. स्पर्श नाम कर्म के आठ भेद

मृदु, कर्कश, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष के भेद से स्पर्श नाम कर्म आठ प्रकार का है।

114. स्पर्श नाम कर्म का सामान्य लक्षण

स्पर्श नाम कर्म उस-उस अपने-अपने शरीर का अपना-अपना स्पर्श उत्पन्न करता है।

115. आनुपूर्वि नाम कर्म के भेद

नरकगत्यानुपूर्वि, तिर्यग्गत्यानुपूर्वि, मनुष्यगत्यानुपूर्वि के तथा देवगत्यानुपूर्वि के भेद से आनुपूर्वि के चार भेद हैं।

116. आनुपूर्वि का लक्षण

इसके कारण अपनी-अपनी गति में जाने के लिए विग्रहगति में पहले छोड़े गये शरीर का आकार होता है।

117. अगुरुलघु नाम कर्म का लक्षण

गुरुलघु नाम कर्म अपने-अपने शरीर को गुरुत्व और लघुत्व से रहित करता है।

118. उपघात शरीर नाम कर्म का लक्षण

उपघात नाम कर्म अपने को बाधा कारक तोंद आदि शरीरावयवों को करता है।

119. परघात शरीर का लक्षण

परघात नाम कर्म दूसरों को बाधा देने वाले सर्पदाढ़, सींग आदि शरीरावयव करता है।

[120. आतपनामकर्मणः लक्षणम्]

आतपनामोष्णप्रभां करोति तत् सूर्यबिम्बे बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिके भवति।

[121. उद्योतनामकर्मणः लक्षणम्]

उद्योतनाम शीतलप्रभां करोति, तत् चन्द्रतारकादिबिम्बेषु तेजोवायुसाधारणवर्जित-चन्द्रतारकादिबिम्बजनितबादरपर्याप्ततिर्यग्जीवेषु भवति।

[122. उच्छ्वासनामकर्मणः लक्षणम्]

उच्छ्वासनाम उच्छ्वासनिःश्वासं करोति।

[123. विहायोगतिनामकर्मणः द्वौ भेदौ]

विहायोगतिनाम प्रशस्ताप्रशस्तभेदाद् द्विधा।

[124. प्रशस्तविहायोगतेः लक्षणम्]

तत्र प्रशस्तविहायोगतिनाम मनोज्ञं गमनं करोति।

[125. अप्रशस्तविहायोगतेः लक्षणम्]

अप्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तगमनं करोति।

[126. त्रसनामकर्मणः लक्षणम्]

त्रसनाम द्वीन्द्रियादीनां चलनोद्वेजनादियुक्तं त्रसकायं करोति।

---

120. आतप नाम कर्म का लक्षण

आतप नाम कर्म उष्ण प्रभा करता है। वह सूर्य बिम्ब में स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों को होता है।

121. उद्योत नाम कर्म का लक्षण

उद्योत नाम कर्म शीतल प्रभा करता है। वह चन्द्र, तारागण आदि के बिम्ब में तथा तेजकायिक वायुकायिक साधारणकायिक जीवों के सिवाय चन्द्रतारक आदि बिम्ब में होने वाले बादरपर्याप्त तिर्यंच जीवों में होता है।

122. उच्छ्वास नाम कर्म का लक्षण

उच्छ्वास नाम कर्म उच्छ्वास और निःश्वास को करता है।

123. विहायोगति नाम कर्म के भेद

विहायोगति नाम कर्म प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से दो प्रकार का है।

124. प्रशस्त विहायोगति का लक्षण

प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म मनोज्ञ गमन करता है।

125. अप्रशस्त विहायोगति का लक्षण

अप्रशस्त विहायोगति अप्रशस्त अमनोज्ञ गमन करता है।

[127. स्थावरनामकर्मणः लक्षणम्]

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावरनाम पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां चलनोद्वेजनादिरहित-स्थावरकायं करोति।

[128. बादरनामकर्मणः लक्षणम्]

बादरनाम परैर्बाध्यमानं स्थूलशरीरं करोति।

[129. सूक्ष्मनामकर्मणः लक्षणम्]

सूक्ष्मनामपरैरबाध्यमानं सूक्ष्मशरीरं करोति।

[130. पर्याप्तनामकर्मणः लक्षणम्]

पर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीनां पूर्णतां करोति।

[131. अपर्याप्तनामकर्मणः लक्षणम्]

अपर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तोनामपूर्णतां करोति।

[132. पर्याप्तीनां षड् भेदाः]

पर्याप्तयश्चाहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासभाषामनःसंबन्धेन षोढा भवन्ति।

---

126. त्रस नाम कर्म का लक्षण

त्रस नाम कर्म चलन, उद्वेजन आदि युक्त द्वीन्द्रिय आदि रूप त्रसकाय को करता है।

127. स्थावर नाम कर्म का लक्षण

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति, स्थावर नाम कर्म पृथ्वी आदि एकेन्द्रियों के चलन, उद्वेजन आदि रहित स्थावरकाय को करता है।

128. बादर नाम कर्म का लक्षण

बादर नाम कर्म दूसरों द्वारा बाधा दिये जाने योग्य स्थूल शरीर को करता है।

129. सूक्ष्म नाम कर्म का लक्षण

सूक्ष्म नाम कर्म दूसरों के द्वारा बाधा न दिये जाने योग्य सूक्ष्म शरीर को करता है।

130. पर्याप्त नाम कर्म का लक्षण

पर्याप्त नाम कर्म स्व-स्व पर्याप्तियों की पूर्णता को करता है।

131. अपर्याप्त नाम कर्म का लक्षण

अपर्याप्त नाम कर्म अपनी-अपनी पर्याप्तियों की अपूर्णता को करता है।

132. पर्याप्तियों के छह भेद

आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास-निश्वास, भाषा और मन ये पर्याप्ति के छह भेद हैं।

[133. आहारपर्याप्तेर्लक्षणम्]

तत्राहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां खलरसभागरूपेण परिमणने आत्मनः शक्ति-निष्पत्तिराहारपर्याप्तिः।

[134. शरीरपर्याप्तेर्लक्षणम्]

खलभागमस्थ्यादिकठिनावयवरूपेण, रसभागं रसरुधिरादिद्रवावयवरूपेण च परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः।

[135. इन्द्रियपर्याप्तेर्लक्षणम्]

स्पर्शनादीन्द्रियाणां योग्यदेशावस्थितस्वस्वविषयग्रहणे शक्तिनिष्पत्तिरिन्द्रिय-पर्याप्तिः।

[136. उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तेर्लक्षणम्]

आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानुच्छ्वासनिःश्वासरूपेण परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिरुच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तिः।

[137. भाषापर्याप्तेर्लक्षणम्]

भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धान्सत्यादिचतुर्विधवाक्स्वरूपेण परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिर्भाषापर्याप्तिः।

---

133. आहार पर्याप्ति का लक्षण

आहार वर्गणा द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धों का खल और रस भाग रूप परिणमन में जीव की शक्ति उत्पन्न होना आहार पर्याप्ति है।

134. शरीरपर्याप्ति का लक्षण

खल भाग को अस्थि आदि कठिन अवयव रूप से तथा रस भाग को रस, रुधिर आदि द्रव अवयव रूप से परिणत करने में जीव की शक्ति उत्पन्न होना शरीर पर्याप्ति है।

135. इन्द्रिय पर्याप्ति का लक्षण

स्पर्शन आदि इन्द्रियों के योग्य देश में अवस्थित अपना-अपना विषय ग्रहण करने में शक्ति उत्पन्न होना इन्द्रिय पर्याप्ति है।

136. उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्ति का लक्षण

आहार वर्गणा-द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धों को उच्छ्वास-निश्वास रूप से परिणत करने के लिए जीव की शक्ति उत्पन्न होना उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्ति है।

137. भाषा पर्याप्ति का लक्षण

भाषा वर्गणा-द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धों को सत्य आदि चार प्रकार-की वाक्रूप से परिणत करने के लिए जीव की शक्ति उत्पन्न होना भाषा पर्याप्ति है।

[138. मनः पर्याप्तेर्लक्षणम्]

दृष्टश्रुतानुमितार्थानां गुणदोषविचारणादिरूपभावमनः परिणमने मनोवर्गणायातपुद्-गलस्कन्धानां द्रव्यमनोरूपपरिणामेन परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिर्मनःपर्याप्तिः।

[139. प्रत्येकशरीरस्य लक्षणम्]

प्रत्येकशरीरनामैकस्य जीवस्येकशरीरस्वामित्वं करोति।

[140. साधारणशरीस्य लक्षणम्]

साधारणशरीरनामानन्तजीवानामेकशरीररस्वामित्वं करोति।

[141. स्थिरनामकर्मणः लक्षणम्]

स्थिरनाम रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणां सप्तधातूनामचलितत्वं करोति।

[142. अस्थिरनामकर्मणः लक्षणम्]

अस्थिरनाम तेषां चलितत्वं करोति।

[143. शुभनामकर्मणः लक्षणम्]

शुभनाम मस्तकादिप्रशस्तावयवं करोति।

---

138. मनःपर्याप्ति का लक्षण

देखे, सुने तथा अनुमित (अनुमान से जाने गये) अर्थों के गुण-दोष विचारणादि रूप भाव मन के परिणमन में, मनोवर्गणा रूप से प्राप्त पुद्गल स्कन्धों के द्रव्य मन रूप परिणाम द्वारा परिणत करने के लिए जीव की शक्ति उत्पन्न होना मनःपर्याप्ति है।

139. प्रत्येक शरीर का लक्षण

प्रत्येक शरीर नाम कर्म एक जीव को एक शरीर का स्वामी करता है।

140. साधारण शरीर का लक्षण

साधारण शरीर नामकर्म अनन्त जीवों को एक शरीर का स्वामी करता है।

141. स्थिर नाम कर्म का लक्षण

स्थिर नाम कर्म रस, रुधिर, माँस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओं की स्थिरता को करता है।

142. अस्थिर नाम कर्म का लक्षण

अस्थिर नाम कर्म उपर्युक्त सप्त धातुओं की अस्थिरता करता है।

143. शुभ नाम कर्म का लक्षण

शुभ नाम कर्म मस्तक आदि प्रशस्त अवयव करता है।

[144. अशुभनामकर्मणः लक्षणम्]

अशुभनामापानाद्यप्रशस्तावयवं करोति।

[145. सुभगनामकर्मणः लक्षणम्]

सुभगनाम परेषां रुचिरत्वं करोति।

[146. दुर्भगनामकर्मणः लक्षणम्]

दुर्भनामारुचिरत्वं करोति।

[147. सुस्वरनामकर्मणः लक्षणम्]

सुस्वरनामश्रवणरमणीयस्वरं करोति।

[148. दुस्सवरनामकर्मणः लक्षणम्]

दुस्स्वरं नाम श्रवणदुस्सहं स्वरं करोति।

[149. आदेयनामकर्मणः लक्षणम्]

आदेयनाम परेर्मान्यतां करोति।

[150. अनादेयनामकर्मणः लक्षणम्]

अनादेयनामामान्यतां करोति।

---

144. अशुभ नाम कर्म का लक्षण

अशुभ नाम कर्म अपान आदि अप्रशस्त अवयवों को करता है।

145. सुभग नाम कर्म का लक्षण

सुभग नाम कर्म (निज शरीर में) दूसरों की रुचिरता करता है।

146. दुर्भग नाम कर्म का लक्षण

दुर्भग नाम कर्म (निज शरीर में) दूसरों की अरुचि करता है।

147. सुस्वर नाम कर्म का लक्षण

सुस्वर नाम कर्म कर्णप्रिय स्वर करता है।

148. दुःस्वर नाम कर्म का लक्षण

दुःस्वर नाम कर्म कानों को दुःसह स्वर करता है।

149. आदेय नाम कर्म का लक्षण

आदेय नाम कर्म दूसरों के द्वारा मान्यता करता है।

150. अनादेय नाम कर्म का लक्षण

अनादेय नाम कर्म दूसरों के द्वारा (निज शरीर में) अमान्यता करता है।

[151. यशस्कीर्तिनामकर्मणः लक्षणम्]

यशस्कीर्तिनाम गुणकीर्तनं करोति।

[152. अयशकीर्तिनामकर्मणः लक्षणम्]

अयशस्कीर्तिनाम दोषकीर्तनं करोति।

[153. निर्माणनामकर्मणः लक्षणम्]

निर्माणनाम शरीरवत् स्वस्वस्थानेषु स्वस्थितानुप्राञ्जलित्वं करोति।

[154. तीर्थकरत्वनामकर्मणः लक्षणम्]

तीर्थकरत्वं नाम पञ्चकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यसमवशरणादिबहु-विधौचित्यविभूतिसंयुक्तार्हन्त्यलक्ष्मीं करोति।

गोत्रम्

[155. गोत्रकर्मणः द्वौ भेदौ]

उच्चनीचभेदाद् गोत्रकर्म द्विधा।

[156. उच्चगोत्रस्य लक्षणम्]

तत्र महाव्रताचरणयोग्योत्तमकुलकारणमुच्चैर्गोत्रम्।

---

151. यशस्कीर्ति नाम कर्म का लक्षण

यशस्कीर्ति नाम कर्म गुणकीर्तन करता है।

152. अयशस्कीर्ति नाम कर्म का लक्षण

अयशस्कीर्ति दोषकीर्तन (बदनामी) करता है।

153. निर्माण नाम कर्म का लक्षण

निर्माण नाम कर्म शरीर के अनुसार स्व-स्व स्थानों में शरीरावयवों का उचित निर्माण करता है।

154. तीर्थंकर नामकर्म

तीर्थंकर नाम कर्म पंच कल्याण के, चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य तथा समवशरण आदि अनेक प्रकार की उचित विभूति से युक्त आर्हन्त्य लक्ष्मी को करता है।

155. गोत्र कर्म के भेद

उच्च और नीच के भेद से गोत्र कर्म दो प्रकार का है।

156. उच्च गोत्र कर्म का लक्षण

महाव्रतों के आचरण योग्य उत्तम कुल का कारण उच्च गोत्र कर्म कहलाता है।

[157. नीचगोत्रस्य लक्षणम्]

तद्विपरीताचरणयोग्यनीचकुलकारणं नीचैर्गोत्रम्।

अन्तरायम्

[158. अन्तरायकर्मणः पञ्च भेदाः]

दानलाभभोगोपभोगवीर्याश्रयभेदादन्तरायकर्म पञ्चधा।

[159. दानान्तरायस्य लक्षणम्]

तत्र दानस्य विघ्नहेतुर्दानान्तरायम्।

[160. लाभान्तरायस्य लक्षणम्]

लाभस्य विघ्नहेतुर्लाभान्तरायम्।

[161. भोगान्तरायस्य लक्षणम्]

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगस्तस्य विघ्नहेतुर्भोगान्तरायम्।

[162. उपभोगान्तरायस्य लक्षणम्]

भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य उपभोगस्तस्य विघ्नहेतुरुपभोगन्तरायम्।

---

157. नीच गोत्र कर्म का लक्षण

ऊपर बताये के विपरीत आचरण योग्य नीच कुलका कारण नीच गोत्र है।

158. अन्तराय कर्म के भेद

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय तथा वीर्यान्तराय के भेद से अन्तराय कर्म पाँच प्रकार का है।

159. दानान्तराय का लक्षण

दान के विघ्न का कारण दानान्तराय होता है।

160. लाभान्तराय का लक्षण

लाभ के विघ्न का कारण लाभान्तराय है।

161. भोगान्तराय का लक्षण

जो एक बार भोग कर छोड़ दिया जाता है उसे भोग कहते हैं। भोगों के अन्तराय का कारण भोगान्तराय है।

162. उपभोगान्तराय का लक्षण

एक बार भोगकर पुनः भोगने योग्य उपभोग कहलाता है, उसके विघ्न का कारण उपभोगान्तराय है।

[163. वीर्यान्तरायस्य लक्षणम्]

वीर्यं शक्तिः सामर्थ्यं तस्य विघ्नहेतुर्वीर्यान्तरायम्।

[164. उत्तरप्रकृतिबन्धस्य समाप्तिः]

एवमुत्तरप्रकृतिबन्धः कथितः।

[165. उत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धस्यागोचरत्वम्]

उत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धोऽगोचरो भवति।

स्थितिबन्धः

[166. स्थितिबन्धकथनम्]

अथ स्थितिबन्ध उच्यते।

[167. स्थितिबन्धस्य लक्षणम्]

ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीनां ज्ञानप्रच्छादनादिस्वस्वभावापरित्यागेनावस्थानं स्थितिः।

[168. स्थितिबन्धस्य समयः]

तत्कालश्चोपचारात्।

---

163. वीर्यान्तराय का लक्षण

शक्ति या सामर्थ्य वीर्य है, उसके विघ्न का कारण वीर्यान्तराय है।

164. उत्तर प्रकृति-बन्ध का उपसंहार

इस प्रकार उत्तर प्रकृति-बन्ध कहा।

165. उत्तरोत्तर प्रकृति-बन्ध

उत्तरोत्तर प्रकृति-बन्ध अगोचर है।

166. स्थितिबन्ध का कथन

अब स्थिति बन्ध कहते हैं।

167. स्थितिबन्ध का लक्षण

ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का ज्ञान को ढँकने आदि रूप अपने स्वभाव को न छोड़ते हुए स्थित रहना स्थिति है।

168. स्थितिबन्ध का काल

उसके काल को उपचार से स्थितिबन्ध कहा जाता है।

[169. ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायस्य चोत्कृष्टा स्थितिः]

तद्यथा ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्कोटि-कोटिसागरोपमप्रमिता।

[170. दर्शनमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिः]

दर्शनमोहनीयस्य सप्ततिः कोटिकोटिसागरोपमप्रमाणा।

[171. चारित्रमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिः]

चारित्रमोहनीयस्य चत्वारिंशत्कोटिकोटिसागरोपमप्रमिता।

[172. नामगोत्रयोरुत्कृष्टा स्थितिः]

नामगोत्रयोर्विंशतिकोटिकोटिसागरोपमप्रमिता।

[173. आयुकर्मणः उत्कृष्टा स्थितिः]

आयुष्यकर्मणस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा। इत्युत्कृष्टस्थितिरुक्ता।

[174. वेदनीयस्य जघन्यस्थितिः]

वेदनीयस्य जघन्यस्थितिर्द्वादशमुहूर्ता।

[175. नामगोत्रयोः जघन्यस्थितिः]

नामगोत्रयोरष्टौ मुहूर्ता।

---

169. ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तराय की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

170. दर्शन मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति

दर्शन मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

171. चारित्र मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति

चारित्र मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

172. नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति

नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटि कोटि सागर प्रमाण है।

173. आयु कर्म की उत्कृष्ट

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति कही।

174. वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है।

[176. शेषाणां जघन्यस्थितिः]

शेषाणां ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयमोहनीयायुष्यान्तरायाणां जघन्यस्थितिरन्तर्मुहूर्ता।

[177. सर्वेषां कर्मणां स्थितिः]

सर्वेषां कर्मणां स्थितिर्नानाविकल्पा।

[178. स्थितिबन्धकथनस्य उपसंहारः]

इति स्थितिरुक्ता।

अनुभागबन्धः

[179. अनुभागबन्धकथनस्य प्रतिज्ञा]

अथानुभाग उच्यते।

[180. अनुभागबन्धस्य लक्षणम्]

कर्मप्रकृतीनां तीव्रमन्दमध्यमशक्तिविशेषोऽनुभागः।

[181. घातिकर्मणामनुभागः]

घातिकर्मणामनुभागो लतादार्वस्थिशैलसमानचतुःस्थानः।

---

175. नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति

नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है।

176. शेष कर्मों की जघन्य स्थिति

शेष ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आयु तथा अन्तराय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

177. सभी कर्मों की स्थिति

सभी कर्मों की स्थिति नाना प्रकार की है।

178. स्थिति बन्ध का उपसंहार

इस प्रकार स्थितिबन्ध कहा।

179. अनुभाग बन्ध कहने की प्रतिज्ञा

अब अनुभाग बन्ध कहते हैं।

180. अनुभाग बन्ध का लक्षण

कर्म प्रकृतियों की तीव्र, मन्द, मध्यम शक्ति विशेष से अनुभाग कहा है।

[182. अघातिकर्मणामनुभागः]

अघातिकर्मणामशुभप्रकृतीनामनुभागो निम्बकाञ्जेरविषहालाहलसदृशचतुःस्थानः, शुभप्रकृतीनामनुभागो गुडखाण्डशर्करामृतसमानचतुःस्थानः।

[183. अनुभागबन्धकथनस्योपसंहारः]

इत्यनुभाग उक्तः।

प्रदेशबन्धः

[184. प्रदेशबन्धकथनस्य प्रतिज्ञा]

अथ प्रदेश उच्यते।

[185. प्रदेशबन्धस्य लक्षणम्]

आत्मप्रदेशेषुद्ध्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्राणि सिद्धराश्यनन्तैकभागप्रमितानाम-भव्यजीवस्यानन्तगुणानां सर्वकर्मपरमाणूनां परस्परप्रदेशानुप्रवेशलक्षणः प्रदेशबन्धः।

---

181. घाति कर्मों का अनुभाग

घाति कर्मों का अनुभाग लता, दारु (काष्ठ), अस्थि तथा शिला के समान चार प्रकार है।

182. अघाति कर्मों का अनुभाग

अघाति कर्मों की अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग नीम, कांजीर, विष, और हालाहल के समान चार प्रकार का तथा शुभ प्रकृतियों का अनुभाग, गुड़, खाँड, शर्करा तथा अमृत के समान चार प्रकार का है।

183. अनुभाग बन्ध कथन का उपसंहार

इस प्रकार अनुभाग बन्ध कहा।

184. प्रदेश बन्ध कथन की प्रतिज्ञा

आगे प्रदेशबन्ध कहते हैं।

185. प्रदेश बन्ध का लक्षण

आत्मा के प्रदेशों में डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र की सत्ता रहती है तथा प्रति समय सिद्धराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण या अभव्य जीवों के अनन्तगुणें समस्त कर्म परमाणुओं का परस्पर प्रदेशों में अनुप्रवेश होना प्रदेश बन्ध है।

[186. प्रदेशबन्धस्योपसंहारः]

इति प्रदेशबन्ध उक्तः।

[187. द्रव्यकर्मणामुपसंहारः]

एवं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविकल्पानि पौद्गलिकानि द्रव्यकर्माणि कथितानि।

भावकर्म

[188. भावकर्मणः लक्षणम्]

उक्तज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मोदयजनिता आत्मनोऽज्ञानरागमिथ्यादर्शनादिपरिणाम-विशेषा भावकर्माणि।

[189. भावकर्मणां परिमाणम्]

तान्यप्यसंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति।

नोकर्म

[190. नोकर्मणः लक्षणम्]

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसशरीरपरिणमनपुद्गलस्कन्धा नोकर्मद्रव्याणि।

[191. संसारिजीवस्य लक्षणम्]

एवंविधद्रव्यभावनोकर्मसंयुक्ताः पञ्चविधसंसरणपरिणताश्चतसृषु गतिषु परिवर्तमानजीवास्संसारिणः।

---

186. प्रदेश बन्ध कथन का उपसंहार

इस प्रकार प्रदेश बन्ध कहा।

187. द्रव्यकर्मों के कथन का उपसंहार

इस प्रकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश के भेद से पौद्गलिक द्रव्य कर्म कहे।

188. भाव कर्म का लक्षण

उक्त ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों के उदय होने वाले आत्मा के अज्ञान, राग, मिथ्यादर्शन आदि परिणामविशेष भाव कर्म हैं।

189. भाव कर्मों का परिमाण

वे भाव कर्म असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

190. नोकर्म का लक्षण

औदारिक, वैक्रियक, आहारक तथा तैजस शरीर के रूप में परिणत पुद्गल स्कन्ध नोकर्म द्रव्य हैं।

[192. मुक्तजीवस्य लक्षणम्]

तत्कर्मत्रयमुक्तास्सिद्धगताववस्थिताः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसूक्ष्मत्वावगाहना-गुरुलघुत्वाव्याबाधरूपाष्टगुणपरिणताः सिद्धपरमेष्ठिनो जीवा मुक्ताः।

[193. संसारिजीवानां द्वौ भेदौ]

तत्र संसारिणो जीवा भव्याभव्यभेदेन द्विधा।

[194. भव्यजीवस्य लक्षणम्]

तत्र रत्नत्रयसामग्रयाः सकलकर्मक्षयं कृत्वानन्तज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिभवनयोग्य-शक्तिविशेषसहिता भव्याः।

[195. भव्यजीवानां चतुर्दशगुणस्थानानि]

तत्र चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनो भव्याः।

[196. अभव्यजीवस्य लक्षणम्]

एकस्मान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादनिवर्तमाना अभव्याः।

[197. अभव्यानां करणत्रयाभावः]

---

191. संसारी जीव का लक्षण

इस प्रकार द्रव्य कर्म, भाव कर्म तथा नोकर्म से युक्त, पाँच प्रकार के परिवर्तनों में परिणत तथा चार गतियों में भ्रमण करते हुए जीव संसारी हैं।

192. मुक्त जीव का लक्षण

उक्त तीन प्रकार के कर्मों से मुक्त, सिद्ध गति में स्थित, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्व-रूप अष्ट गुण परिणत सिद्ध परमेष्ठी मुक्त जीव हैं।

193. संसारी जीवों के दो भेद

संसारी जीव भव्य और अभव्य के भेद से दो प्रकार के हैं।

194. भव्य जीव का लक्षण

रत्नत्रय रूप सामग्री के द्वारा समस्त कर्मक्षय करके अनन्त-ज्ञान आदि स्वरूप प्राप्ति होने योग्य शक्ति विशेष से सहित जीव भव्य जीव कहलाते हैं।

195. भव्य जीवों के चौदह गुणस्थान

चौदह गुणस्थान में स्थित भव्य होते हैं।

196. अभव्य जीव का लक्षण

केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थान में ही रहनेवाले अभव्य जीव होते हैं।

तेषां कदाचिदपि सम्यग्दर्शनप्राप्तिकारणकरणत्रयविधानासंभवात्।

[198. मिथ्यात्वगुणस्थानम्]

तत्र दर्शनमोहनीयस्य मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयावतत्त्वश्रद्धानरूपमिथ्यादर्शनपरिणतस्सर्वज्ञवीतरागप्रणीते जीवादितत्त्वमश्रद्धानस्संशयानो वान्यप्रणीतमतत्त्वं श्रद्दधानो वा जीवो मिथ्यादृष्टिरिति प्रथमगुणस्थानवर्ती भवति।

[199. मिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वस्य विधानम्]

अनादिमिथ्यादृष्टिर्वा सादिमिथ्यादृष्टिर्वा लब्धिपञ्चकसंनिधाने प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति।

[200. क्षयोपशमलब्धिः]

तद्यथा कदाचित्कस्यचिज्जीवस्याशुभकर्मणामनुभागः प्रतिसमयमनन्तगुणहान्युदेति, इति तेषां सर्वघातिस्पर्धकानामनन्तगुणहानिं विधाय तद्द्रव्यस्य सदवस्था उपशमः, अनन्तहीनानुभागोदये सत्यपि क्षयोपशम् इत्युच्यते। तस्य लब्धिः क्षयोपशमलब्धिः।

[201. विशुद्धिलब्धिः]

क्षयोपशमलब्धौ सत्यामुत्पन्नस्सातादिप्रशस्तप्रकृतिबन्धकारणं जीवस्य यो विशुद्धिपरिणामस्तल्लाभो विशुद्धिलब्धिः।

---

197. अभव्यों के करणत्रय का अभाव

उनके कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के कारण करणत्रय होना असंभव है।

198. मिथ्यात्व गुणस्थान

दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अतत्त्वश्रद्धान रूप मिथ्यादर्शन से युक्त, सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत जीव आदि तत्त्वों का अश्रद्धान करने वाला अथवा संशय करनेवाला, या अन्यप्रणीत अतत्त्वों का श्रद्धान करने वाला जीव मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थानवर्ती होता है।

199. मिथ्यादृष्टि के सम्यक्व का विधान

अनादि मिथ्यादृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि पाँच लब्धियों के सद्भाव में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है।

200. क्षयोपशमलब्धि

कभी किसी जीव के अशुभ कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनन्त गुण हानि क्रम से उदित होता है। इस प्रकार उन सर्वघाति स्पर्धकों की अनन्त गुणहानि करके उस द्रव्य का सदवस्था रूप उपशम अनन्त हीन अनुभाग के उदय होने पर भी क्षयोपशम कहलाता है। उसकी लब्धि क्षयोपशमलब्धि है।

[202. देशनालब्धिः]

षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थानामुपदेशकारकाचार्योपाध्यायदेशना- लाभः, उपदेशकरहितक्षेत्रे पूर्वोपदिष्टजीवादितत्त्वधारणस्मरणलाभो वा देशनालब्धिः।

[203. प्रायोग्यतालब्धिः]

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुत्कृष्टस्थितिं विशुद्धिपरिणामविशेषेण खण्डयित्वान्तः-कोटिकोटिस्थितिं स्थापयति, लतादार्वस्थिशैलरूपघातिकर्मानुभागं खण्डयित्वा लतादारूपद्विस्थानं स्थापयति, तद्विशुद्धिपरिणामयोग्यतालाभः प्रायोग्यतालब्धिः।

[204. करणलब्धिः]

दर्शनमोहोपशमनादिकरणविशुद्धपरिणामः करण इत्युच्यते। तल्लाभः करणलब्धिः।

[205. करणस्य त्रयो भेदाः]

स च करणोऽधःप्रवृत्तकरणोऽपूर्वकरणोऽनिवृत्तिकरणश्चेति त्रिधा।

[206. अधः प्रवृत्तकरणस्य कालः]

तत्राधःप्रवृत्तकरणकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः॥2777॥

---

201. विशुद्धिलब्धि

सातादि प्रशस्त प्रकृतियों के बन्ध का कारण जीव का जो विशुद्धि परिणाम क्षयोपशम लब्धि के होने से उत्पन्न होता है उसका लाभ विशुद्धिलब्धि है।

202. देशनालब्धि

छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, तथा नव पदार्थों के उपदेश करने वाले आचार्य, उपाध्याय की देशनाका लाभ अथवा उपदेशक रहित क्षेत्र में पूर्व उपदिष्ट जीव-आदि तत्त्वों के धारण, स्मरण का लाभ देशनालब्धि है।

203. प्रायोग्यतालब्धि

आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को विशुद्धि परिणामविशेष-द्वारा खण्डित करके अन्तः कोटि कोटि प्रमाण स्थिति में स्थापित करना। तथा लता, दारु (काष्ठ), अस्थि, शैलरूप घाति कर्मों के अनुभाग को खण्डित करके लता, दारुरूप दो स्थानों में स्थापित करना है। इस प्रकार की विशुद्धिरूप परिणामों की योग्यता का लाभ प्रायोग्यतालब्धि है।

204. करणलब्धि

दर्शन मोह के उपशम आदि करने वाला विशुद्धि परिणाम करण कहलाता है, उसका लाभ करणलब्धि है।

[207. अपूर्वकरणस्य कालः]

ततः संख्येयगुणहीनोऽपूर्वकरणकालः॥277॥

[208. अनिवृत्तिकरणस्य कालः]

ततः संख्येयगुणहीनोऽनिवृत्तिकरणकालः॥27॥

[209. त्रयाणां करणानां कालः]

त्रितयं समुदितमप्यन्तर्मुहूर्तकाल एव।

[210. करणत्रयेषु विशुद्धिः]

अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य विशुद्धिः प्रतिसमयमनन्तगुणा अप्यनिवृत्तिकरणचरमसमयं वर्तन्ते।

[211. अधःप्रवृत्तकरणकाले विशुद्धिपरिणामः]

तत्राधःप्रवृत्तकरणकाले संख्यातलोकमात्रविशुद्धिपरिणामविकल्पा जघन्यमध्योत्कृष्टाः सन्ति।

---

205. करण के तीन भेद

वह करण अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण के भेद से तीन प्रकार का है।

206. अधःप्रवृत्तकरण का काल

अधःप्रवृत्तकरण का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

207. अपूर्वकरण का काल

उससे संख्यात गुणहीन अपूर्वकरण का काल है।

208. अनिवृत्तिकरण का काल

उससे संख्यात गुणहीन अनिवृत्तिकरण का काल है।

209. तीनों करणों का सम्मिलित काल

तीनों करणों का सम्मिलित काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है।

210. करणत्रय में विशुद्धि

अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से आरम्भ करके विशुद्धि प्रति समय अनन्तगुणी होकर भी अनिवृत्तिकरण के चरम समय तक रहती है।

211. अधःप्रवृत्तकरण काल में विशुद्धि परिणाम

अधःप्रवृत्तकरण के समय में असंख्यात लोकमात्र विशुद्धि परिणाम विकल्प जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट होते हैं।

[212. अधःप्रवृत्तकरणस्याङ्कसंदृष्टिः]

तत्राङ्कसंदृष्ट्याधःप्रवृत्तकरणलक्षणमुच्यते—प्रथमसमयनानाजीवानां विशुद्धि-परिणामविकल्पानां जघन्यखण्डमिदम् 39। अस्माद्द्वितीयं खण्ड विशेषाधिकम् 40। तृतीयं विशेषाधिकं 41। एवं चरमचतुर्थखण्डं विशेषाधिकं 42। द्वितीयसमये जघन्यखण्डं प्रथमसमयजघन्यखण्डाद्विशेषाधिकम् 40। ततो द्वितीयखण्डं विशेषाधिकं 41। ततस्तृतीयखण्डं विशेषाधिकं 42। एवं चरमखण्डं विशेषाधिकं 43। एवं तृतीयादिसमयेषु जघन्यादिखण्डानि विशेषाधिकानि भवन्ति। ये केषांचिज्जीवानामु-परिमसमयपरिणमनवर्तिनां विशुद्धि परिणामविकल्पा अधःस्तनसमयवर्तिनां केषां चिज्जीवानां विशुद्धिपरिणामविकल्पैस्सह सदृशास्सन्तीत्यधःप्रवृत्त- करणसंज्ञा युक्ता। तत्र प्रथमसमयजघन्यखण्डं चरमसमयचरमखण्डं च केनापि जघन्योत्कृष्टेन सदृशं न भवति, तथापि तद्द्वयं विहायेतरेषां सर्वेषां खण्डानामुपर्यधश्च सादृश्यमस्तीति, तेनाधःप्रवृत्तकरणसंज्ञा न विरुध्यते। अस्मिन्नधःप्रवृत्तकरणे प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागः प्रतिसमयेऽनन्तगुणं वर्धते, अप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागः प्रतिसमयमनन्तगुणहीनो भवति, संख्यातसहस्रस्थितिबन्धापसरणानि भवन्ति, प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्धिश्च वर्तते, इत्येतानि चत्वार्यावश्यकानि सन्ति। पुनर्गुणश्रेणिनिर्जरागुणसंक्रमस्थितिकाण्डकघातानुभागकाण्डकघाताश्चेति चत्वार्यावश्यकानि न सन्ति, तत्कारणविशुद्धिविशेषाभावात्।

[213. अपूर्वकरणम्]

ततः परमपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरागुणसंक्रमस्थितिकाण्डकघाताश्च प्रारभ्यन्ते। अत्रापि जघन्यमध्यमोत्कृष्ट विशुद्धिपरिमाणाधःप्रवृत्तपरिणामेभ्यो

---

212. अधःप्रवृत्तकरण की अंक संदृष्टि

अंकसंदृष्टि की अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरण का लक्षण कहते हैं—प्रथम समय में नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम विकल्पों का जघन्य खण्ड 39 है। इससे द्वितीया खण्ड विशेष अधिक है 40। इससे तीसरा विशेष अधिक है 41। इसी प्रकार अन्तिम चौथा खण्ड भी विशेष अधिक है 42। द्वितीय समय में जघन्य खण्ड प्रथम समय के जघन्य खण्ड से विशेष अधिक है 40। उससे द्वितीय खण्ड विशेष अधिक है 41। उससे तृतीय खण्ड विशेष अधिक है 42। इसी प्रकार अन्तिम चौथा खण्ड विशेष अधिक है 43। इस प्रकार तृतीय आदि समयों में तथा अन्तिम समय में जघन्य आदि खण्ड विशेष अधिक होते हैं। जो किन्हीं जीवों के ऊपर के समय में परिणमन करने वाले विशुद्धि परिणाम विकल्पों के साथ समान होते हैं। इसलिए इसकी अधःप्रवृत्तकरण संज्ञा उचित है। यद्यपि प्रथम समय का जघन्य खण्ड तथा अन्तिम समय का अन्तिम खण्ड किसी भी जघन्य या उत्कृष्ट खण्ड के सदृश नहीं होता, फिर भी उन दोनों को छोड़कर अन्य सभी खण्डों का ऊपर तथा नीचे सादृश्य है, इसलिए अधःप्रवृत्तकरण

संख्यातलोकगुणिताः सन्ति। तत्र प्रथमसमयवर्तिनानाजीवविशुद्धिपरिणामा असंख्यातलोकमाता अङ्कसंदृष्ट्या 456। एते सर्वेऽप्येकेनैव खण्डं बहुखण्डानीव सन्ति। उपरितनसमयपरिणामैस्सादृश्याभावात्। द्वितीयसमयपरिणामा विशेषाधिकाः 472। एतेऽप्येकमेव खण्डम्। उपर्यधोऽधत्वसादृश्याभावाद्बहुखण्डाभावः। एवं तृतीयादिसमयेष्वाचरमसमयं विशुद्धिपरिणामा एकैकखण्डं कृताः विशेषाधिकाः सन्ति। अत एव कारणात्पूर्वपूर्वसमयोऽप्रवृत्ता एव विशुद्धिपरिणामा उत्तरसमये भवन्तीत्यपूर्वकरणसंज्ञा युक्ता। तस्याङ्कसंदृष्टिः।

5	6	7
5	5	2
5	3	6
5	2	0
5	0	4
4	8	8
4	7	2
4	5	6

[214. अनिवृत्तिकरणम्]

ततः परमनिवृत्तिकरणप्रथमसमये नानाजीवानां विशुद्धिपरिणामोऽपूर्वकरणे चरमसमयसर्वोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामादनन्तगुणविशुद्धिर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पा-

---

कहने में विरोध नहीं आता। इस अधःप्रवृत्तकरण में–प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग प्रति समय अनन्तगुणा बढ़ता है तथा अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग प्रति समय अनन्तगुणा हीन होता है। संख्यात सहस स्थितिबन्धापसरण होते हैं तथा प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धि के हिसाब से विशुद्धि होती है। ये चार आवश्यक होते हैं। किन्तु गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रम, स्थितिकाण्डकघात तथा अनुभागकाण्डकघात, ये चार आवश्यक नहीं होते हैं, क्योंकि कारण विशुद्धि-विशेष रूप परिणामों का अभाव है।

213. अपूर्वकरण

इसके बाद अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणि निर्जरा, गुणसंक्रम, स्थिति काण्डकघात तथा अनुभाग काण्डकघात प्रारम्भ होते हैं। यहाँ भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट विशुद्धि परिणाम अधःप्रवृत्तकरण के परिणामों से असंख्यात लोक गुणे होते हैं। यहाँ प्रथम समयवर्ती नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। उनकी अंक संदृष्टि 456 है। ये सभी एक ही खण्ड से बहुत खण्डों की तरह होते हैं। क्योंकि ऊपर के समयवर्ती परिणामों के सादृश्य का अभाव है।

भावादेकादृश एव। द्वितीयसमयेऽपि प्रथमसमयविशुद्धेरनन्तगुणविशुद्धिर्नाना-जीवानामेकादृश एव विशुद्धिपरिणामो भवति। एवं तृतीयादिसमयेष्वनिवृत्ति-करणचरमसमयं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धया वर्धमानोऽपि नानाजीवानां विशुद्धिपरिणामो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहित एकादृश एव भवति। अत एव कारणान्निवृत्तिभेदो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पपरिणामस्य नास्तीत्यनिवृत्तिकरणसंज्ञा युक्ता।

[215. अनिवृत्तिकरणस्य विशेषः]

तस्यानिवृत्तिकरणस्य चरमसमये भव्यश्चातुर्गतिको मिथ्यादृष्टिः संज्ञी पंचेन्द्रिय-पर्याप्तो गर्भजो विशुद्धिवर्धमानः शुभलेश्यो जाग्रदवस्थितो ज्ञानोपयोगवान् अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान्मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिश्चो-पशमय्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति। तस्य कालो जघन्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तः।

[216. सासादननाम द्वितीयगुणस्थानम्]

तत्रैकसमयादारभ्य षडावलिसमयपर्यन्ते कालेऽवशिष्टे सति अनन्तानुबन्धिक्रोध-मानमायालोभानां मध्येऽन्यतमस्य कषायस्योदये सति जीवः सम्यक्त्वं विराध्य यावन्मिथ्यात्वं प्राप्नोति तावत्सासादनसम्यग्दृष्टिर्द्वितीयगुणस्थानवर्ती भवति।

द्वितीय समयवर्ती परिणाम विशेष अधिक होते हैं 472। ये भी एक ही खण्ड हैं। ऊपर और नीचे अधत्व के सादृश्य का अभाव होने से बहुत खण्ड नहीं होते। इसी प्रकार तृतीय आदि समयों में चरम समय पर्यन्त विशुद्धि परिणाम एक-एक खण्ड करके ही विशेष अधिक होते हैं। इसी कारण से पूर्व पूर्व समय में नहीं हुए अप्रवृत्त ही विशुद्धि परिणाम उत्तर समय में होते हैं, इसलिए अपूर्वकरण कहना उचित है। इसकी अंक संदृष्टि ऊपर दी है।

214. अनिवृत्तिकरण

इसके बाद अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम अपूर्वकरण में चरम समय सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि परिणामों से अनन्तगुणे विशुद्ध जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट विकल्पों के न होने के कारण एक सदृश ही होते हैं। द्वितीय समय में भी प्रथम समय की विशुद्धि से अनन्तगुणी विशुद्धियुक्त नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम एक सदृश ही होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयों में अनिवृत्तिकरण के चरम समय पर्यन्त प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धि युक्त विशुद्धि से बढ़ने वाले भी नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट परिणामों में निवृत्तिभेद नहीं है, इसलिए अनिवृत्तिकरण कहना उचित है।

215. अनिवृत्तकरण विशेष

उस अनिवृत्तिकरण के चरम समय में भव्य चारों गतियों में से किसी भी गति में वर्तमान, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, गर्भज, जिसकी विशुद्धि बढ़ रही है,

[217. सासादनगुणस्थानस्य कालः]

तस्य कालो जघन्य एकसमय उत्कृष्टः षडावलिमात्रस्ततः परं नियमेन मिथ्यात्व-प्रकृतेरुदयान्मिथ्यादृष्टिर्भवति।

[218. सम्यग्मिथ्यादृष्टिनाम तृतीयगुणस्थानं]

सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृतेरर्हदुपदिष्टसन्मार्गे मिथ्यात्वादिकल्पितदुर्मार्गे च श्रद्धावान् जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति तृतीयगुणस्थानवर्ती भवति।

[219. तृतीयगुणस्थानस्य स्थितिः]

तद्गुणस्थाने उत्तरगत्यायुर्बन्धो मरणं मारणान्तिकसमुद्घातादणुव्रतमहाव्रतग्रहणं च नास्ति। यदा म्रियते तदा सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते सम्यङ्मिथ्यात्वे न म्रियते। सम्यङ्मिथ्यात्वपरिणामात्पूर्वस्मिन्सम्यक्त्वे वा मिथ्यात्वे वा परभवायुर्बन्धे तदेवासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं वा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं वा प्राप्य म्रियत इत्यर्थः।

[220. असंयतसम्यग्दृष्टिनाम चतुर्थगुणस्थानम्]

औपशमिकसम्यक्त्वे वा क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा वर्तमानो जीवोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभकषायोदयावद्भावशविधेऽसंयमे प्रवृत्तोऽसंयतसम्यग्दृष्टिरिति चतुर्थगुणस्थानवर्ती भवति।

शुभ लेश्या वाला, जागृत, ज्ञानोपयोगवान्, अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति का उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है। उसका जघन्य तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

216. सासादन नामक द्वितीय गुणस्थान

उसमें-से एक समय से लेकर षडावलि समय पर्यन्त काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया तथा लोभ में से किसी एक कषाय के उदय होने पर जीव सम्यक्त्व की विराधना करके जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, तब तक सासादन सम्यग्दृष्टि नामक द्वितीय गुणस्थानवर्ती होता है।

217. सासादन गुणस्थान का समय

उसका जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट षडावलि मात्र है। उसके बाद नियम से मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होने से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

218. सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थान

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अर्हन्त-द्वारा उपदिष्ट सन्मार्ग में तथा मिथ्यात्व आदि कल्पित दुर्मार्ग में श्रद्धान करने वाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थानवर्ती होता है।

[221. देशसंयमो नाम पञ्चमगुणस्थानम्]

द्वितीयकषायोदयाभावे जीवोऽणुगुणशिक्षाव्रतरूप एकादशनिलयविशिष्टे देशसंयमे वर्तमानः श्रावक इति पञ्चमगुणस्थानवर्ती भवति।

[222. प्रमत्तसंयतनाम षष्ठगुणस्थानम्]

प्रत्याख्यानावरणकषायोदयाभावे महाव्रतरूपं सकलसंयमं प्रतिपद्य संज्वलननोकषायमध्यमानुभागोदयात्पञ्चदशसु प्रमादेषु वर्तमानो जीवः प्रमत्तसंयत इति षष्ठगुणस्थानवर्ती भवति।

[223. अप्रमत्तसंयतनाम सप्तमगुणस्थानम्]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायमन्दानुभागोदयात्सकलहिंसादिनिवृत्तिरूपसंयमे प्रमादरहिते वर्तमानो जीवोऽप्रमत्तसंयत इति सप्तमगुणस्थानवर्ती भवति।

---

219. तृतीय गुणस्थान की स्थिति

इस गुणस्थान में आगे गति के लिए आयुबन्ध, मरण, मारणान्तिक समुद्घात तथा अणुव्रत या महाव्रत का ग्रहण नहीं होता। जब मरता है तो सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व को प्राप्त करके मरता है। सम्यग्मिथ्यात्व में नहीं मरता। अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व परिणाम से पहले सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व में परभव की आयु का बन्ध होने पर उसी असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को प्राप्त करके मरता है।

220. असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चौथा गुणस्थान

औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व अथवा वेदकसम्यक्त्व में वर्तमान जीव अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया तथा लोभ कषाय के उदय के कारण बारह प्रकार के असंयम में प्रवृत्त रहने से असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होता है।

221. देशसंयम नामक पाँचवाँ गुणस्थान

द्वितीय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभाव में जीव अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत रूप ग्यारह स्थान विशिष्ट देशसंयम में वर्तमान श्रावक पंचम गुणस्थानवर्ती होता है।

222. प्रमत्तसंयत नामक छठा गुणस्थान

प्रत्याख्यानावरण कषायों के उदय के अभाव में महाव्रत रूप सकल संयम को प्राप्त करके संज्वलन नोकषाय के मध्यम अनुभाग के उदय के कारण पन्द्रह प्रमादों में वर्तमान जीव प्रमत्त संयत नामक छठे गुणस्थानवर्ती होता है।

[224. सातिशयाप्रमत्तस्य लक्षणम्]

स एव यदा क्षपकोपशमकश्रेण्यारोहणं प्रत्यभिमुखो भवति तदा करणत्रयमध्येऽधः-प्रवृत्तकरणं करोतीति स एव सातिशयाप्रमत्त इत्युच्यते।

[225. अपूर्वकरणो नामाष्टमगुणस्थानम्]

पुनः क्षपकश्रेणिमुपशमकश्रेणिं वा समारुह्य प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या वर्धमानो गुणश्रेणिनिर्जराद्यावश्यकानि कुर्वन्नुत्तरोत्तरसमयेषु पूर्वपूर्वसमयाप्राप्तानपूर्वानेव विशुद्धिपरिणामान् प्रतिपद्यमानो जीवः क्षपकः उपशमको वापूर्वकरणसंयत इत्यष्टमगुणस्थानवर्ती भवति।

[226. अनिवृत्तिकरणनाम् नवमगुणस्थानम्]

पुनरेकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीः क्षपयन्नुपशमयंश्च प्रतिसमयं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितनानाजीवानामेकं सदृशविशुद्धिपरिणामस्थानं प्रतिपद्यमानश्चानिवृत्तिकरणसंयत इति नवमगुणस्थानवर्ती भवति।

[227. सूक्ष्मसांपरायनाम दशमगुणस्थानम्]

पुनः सूक्ष्मत्व कृष्टिगतलोभानुभागोदयमनुभवन् चारित्रमोहनीयप्रकृतीः क्षयोपशमयन्प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या वर्तमानः प्रशस्तध्यानपरिणतः सूक्ष्मसाम्परायेति दशमगुणस्थावर्ती भवति।

---

223. अप्रमत्तसंयत नामक सातवाँ गुणस्थान

संज्वलन क्रोध, मान, माया तथा लोभ कषाय के मन्द अनुभाग के उदय से सकल हिंसा आदि निवृत्ति रूप प्रमाद रहित संयम में वर्तमान जीव अप्रमत्तसंयत नामक सप्तम गुणस्थानवर्ती होता है।

224. सातिशय अप्रमत्त संयत का लक्षण

वही जब क्षपक या उपशम श्रेणी चढ़ने के अभिमुख होता है, तब तीन करणों में से अधःप्रवृत्तकरण करता है, इसलिए वही सातिशय अप्रमत्त कहलाता है।

225. अपूर्वकरण नामक आठवाँ गुणस्थान

फिर क्षपकश्रेणि अथवा उपशम श्रेणि का आरोहण करके प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि द्वारा बढ़ता हुआ गुणश्रेणि निर्जरा आदि आवश्यकों को करता हुआ उत्तरोत्तर समय में पूर्व-पूर्व समय में अप्राप्त अपूर्व ही विशुद्धि परिणामों को प्राप्त करके क्षपक अथवा उपशमक जीव अपूर्वकरण संयत नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती होता है।

226. अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान

इसके बाद चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का क्षय या उपशम करता हुआ प्रति समय जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट विकल्प रहित नाना जीवों के एक सदृश विशुद्धि परिणाम स्थान को प्राप्त कर अनिवृत्तिकरण संयत नामक नवम गुणस्थानवर्ती होता है।

[228. उपशान्तकषायनाम एकादशगुणस्थानम्]

एकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीः समः निरवशेषमुपशमय्य यथाख्यातचारित्ररूप-विशुद्धिविशेषपरिणतः कतकफलप्रयोगादधःकृताप्रसन्नतोयसदृशविशुद्धिपरिणामः शुद्ध (शुक्ल) ध्याननिष्ठ उपशान्तकषाय-वीतरागछद्मस्थ इत्येकादशगुणस्थानवर्ती भवति।

[229. क्षीणकषायनाम द्वादशगुणस्थानम्]

समस्तमोहनीयप्रकृतीर्निरवशेषं निर्मूल्य स्फटिकभाजनगतप्रसन्नतोयसमविशुद्धान्त-रङ्गो द्वितीयशुक्लध्यानबलेन ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयान्तरायरूपघातित्रयं क्षपयन् परमार्थनिर्ग्रन्थः क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ इति द्वादशगुणस्थानवर्ती भवति।

[230. सयोगकेवलिनाम त्रयोदशगुणस्थानम्]

शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धघातिकर्मचतुष्टयेन्धनः प्रादुर्भूताचिन्त्यकेवलज्ञानदर्शनविशिष्ट-लोचनद्वयावलोकितकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुसंभृतलोकालोकानन्तसुखसुधारससंतृप्तो-ऽनन्तानन्तवीर्यामितबलः सकलात्मप्रदेशेषु निचितविशुद्धचैतन्यस्वभावस्तीर्थंकर-

---

227. सूक्ष्मसांपराय नामक दशम गुणस्थान

फिर सूक्ष्म कृष्टिगत लोभ के अनुभाग के उदय का अनुभव करता हुआ चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों का क्षय या उपशम करता हुआ, प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि में वर्त्तमान, प्रशस्त ध्यान परिणत, सूक्ष्मसांपराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती होता है।

228. उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवाँ गुणस्थान

चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का पूर्ण रूप से उपशमन करके यथाख्यात चारित्ररूप विशुद्धि विशेष परिणत कतक फल (निर्मली) के प्रयोग से नीचे बैठ गया है मैल जिसका ऐसे निर्मल जल के समान विशुद्ध परिणाम वाला शुक्ल ध्याननिष्ठ उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती होता है।

229. क्षीणकषाय नामक बारहवाँ गुणस्थान

मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियों को संपूर्ण रूप से नष्ट करके स्फटिक पात्र में रखे स्वच्छ जल के समान विशुद्ध अन्तरंगवाला द्वितीय शुक्लध्यान के बल से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय रूप तीन घातिया कर्मों का क्षय करता हुआ परम निर्ग्रन्थ क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ नामक बारहवें गुणस्थानवर्ती होता है।

230. सयोगकेवली नामक तेरहवाँ गुणस्थान

शुक्लध्यानरूप अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्मरूप इन्धन के जल जाने से प्रकट हुए अचिन्त्य केवलज्ञान तथा केवल दर्शनरूप विशिष्ट नेत्र-द्वय के द्वारा कालत्रयवर्ती समस्त वस्तु समूह से भरे हुए लोकालोक को देखने वाले, अनन्त सुखरूप सुधारस से संतृप्त, अनन्त वीर्यरूप अमित बलयुक्त, समस्त आत्म प्रदेशों में व्याप्त विशुद्ध

पुण्यविशेषोदयं संप्राप्ताष्टमहाप्रातिहार्यचतुस्त्रिंशदतिशयसमवसरणविभूतिसंभावितकैवल्यकल्याणो दिवाकरकोटिबिम्बविडम्बितप्रभाभासुरप्रक्षीणतमः परमौदारिकदिव्यदेह (इतर) केवली वा स्वयोग्यगन्धकुट्यादि विभूतिर्जगत्त्रयमव्यजनप्रबोधपारायणपरमदिव्यध्वनिश्शतेन्द्रवन्दितस्सयोगकेवलीति त्रयोदशगुणस्थानवर्ती भवति।

[231. अयोगकेवलिनाम चतुर्दशगुणस्थानम्]

पुनः स एव यद्यन्तर्मुहूर्ताविशेषायुस्थितिस्ततोऽधिकशेषाघातिकर्मत्रयस्थितिस्तदाष्टभिः समयैर्दण्डकवाटप्रतरलोकपूरणप्रसर्पणसंहारस्य समुद्घातं कृत्वान्तर्मुहूर्तावशेषितायुःस्थितिसमानशेषाघातिकर्मस्थितिस्सन् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामतृतीयशुक्लध्यानबलेन कायवाङ्मनोनिरोधं कृत्वायोगकेवली भवति। यदि पूर्वमेव समस्थितिं कृत्वा घातिचतुष्टयस्तदा समुद्घातक्रियया विना तृतीयशुक्लध्यानेन योगनिरोधं कृत्वायोगकेवली भवति।

चैतन्य स्वभाव, तीर्थंकर पुण्य विशेष के उदय से प्राप्त हुए अष्ट महाप्रातिहार्य, चौंतीस अतिशय, समवशरण विभूति के द्वारा मनाया गया है कैवल्य कल्याणक जिनका, करोड़ों सूर्यों के प्रतिबिम्ब को तिरस्कृत करने वाली प्रभा से देदीप्यमान परम औदारिक दिव्य देह से युक्त तीर्थंकर अथवा स्वयोग्य गन्धकुटी आदि विभूति से युक्त सामान्य केवली परम दिव्य-ध्वनि द्वारा तीनों लोकों के भव्य जनों को प्रबोध देने में तत्पर, सौ इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानवर्ती हैं।

231. अयोगकेवली नामक चौदहवाँ गुणस्थान

फिर वही (सयोगकेवली) यदि अन्तर्मुहूर्त आयु स्थिति शेष रहने पर उससे अधिक शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति शेष रहती तो आठ समयों द्वारा दण्ड, कपाट, प्रतर, लोक पूरण, प्रसर्पण पुनः प्रतर कपाट और दण्डरूप संहार के द्वारा समुद्घात करके, अन्तर्मुहूर्त सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तृतीय शुक्लध्यान के बल से मन, वचन, कायका निरोध करके अयोगकेवली होता है। यदि पहले ही घातिया कर्मों की स्थिति आयु कर्म की स्थिति के बराबर होती है, तब समुद्घात क्रिया के बिना तृतीय शुक्लध्यान के द्वारा योग निरोध करके अयोगकेवली होता है।

232. मुक्तावस्था का स्वरूप

फिर वही अयोगकेवली समस्त शील गुण संपन्न व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान के द्वारा पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण करने योग्य, अपने गुणस्थान काल के द्विचरम समय में देह आदि बहत्तर प्रकृतियों का क्षय करके फिर चरम समय में एक साथ वेदनीय आदि तेरह कर्म प्रकृतियों का क्षय करके उसके अनन्तर समय में, निष्कर्म, अशरीर, सम्यक्त्व आदि अष्ट गुण युक्त, अन्तिम शरीर से कुछ न्यून पुरुषाकार, विशुद्ध ज्ञान-दर्शनमय, घनस्वरूप जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण एक

[232. मुक्तावस्थायाः स्वरूपम्]

पुनः स एवायोगकेवली सकलशीलगुणसंपन्नो व्युपरतक्रियानिवृत्तिनामचतुर्थशुक्ल-ध्यानेन पञ्चलघ्वक्षरोच्चरणमात्रस्वगुणस्थानकालद्विचरमसमये देहादिद्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयित्वा पुनश्चरमसमये-एकतरवेदनीयादित्रयोदशकर्मप्रकृतीः क्षपयित्वा तदनन्तरसमयें निष्कर्माशरीरसम्यक्त्वाद्यष्ट गुणपुष्ट परमशरीरार्त्किचिदूनपुरुषा-कारविशुद्धि ज्ञानदर्शनमयो जीवो धनस्वरूप ऊर्ध्वगमनस्वभावादेकस्मिन्नेव समये लोकाग्रं गत्वा सिद्धपरमेष्ठी सन्सर्वकालमनन्तसुखतृप्तः केवलज्ञानदर्शनद्वयनिर्मल-लोचनद्वयेन त्रिकालगोचरानन्तद्रव्यगुणपर्यायान् लोकालोको च जानन् पश्यन्नवतिष्ठते। लोकाद्बहिः सति सहकारिधर्मास्तिकायाभावान्न गच्छति। अत एव लोकालोकविभागश्च। इति सकलकर्मप्रकृतिरहितसिद्धात्मस्वरूपं प्राप्तुकामा भव्या अनवरतं परमागमाभ्यासजनितनिर्मलसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोभावनानिष्ठा भवन्तु।

जयन्ति विधुताशेषपापाञ्जनसमुच्चयाः।
अनन्तानन्तधीर्दृष्टिसुखवीर्या जिनेश्वराः॥

कृतिरियमभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिनः।

इतिकर्मप्रकृतिः।

ही समय में लोक के अग्र भाग में जाकर सिद्ध परमेष्ठी होकर, अनन्तकाल तक अनन्त सुख से तृप्त केवलज्ञान तथा केवलदर्शन रूप निर्मल लोचन द्वय के द्वारा त्रिकाल गोचर अनन्त द्रव्य गुण पर्यायों को तथा लोक-अलोक को जानता देखता अवस्थित रहता है। वह लोक के आगे, सहकारी धर्मास्तिकाय के न होने के कारण, नहीं जाता। और इसलिए लोक तथा अलोक का विभाग है।

इस प्रकार समस्त कर्मप्रकृतियों से रहित सिद्धों के आत्म स्वरूप को प्राप्त करने के इच्छुक भव्य जीव निरन्तर परमागम के अभ्यास-द्वारा उत्पन्न निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और तपकी भावना से विशिष्ट हों।

जिन्होंने समस्त पाप-मल के समूह को धो डाला है तथा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को प्राप्त कर लिया है, वे जिनेन्द्रदेव जयवन्त हों।

यह कृति अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की है।

कर्मप्रकृति समाप्त

प. पू. उपाध्याय श्री 108 निर्णय सागर जी महाराज द्वारा रचित, संपादित एवं निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य

- ☞ सर्वोदयी नैतिक धर्म
- ☞ आहार दान
- ☞ दान के अचिन्त्य प्रभाव
- ☞ धर्म संस्कार भाग-1
- ☞ हमारे आदर्श
- ☞ जिन श्रमण भारती
- ☞ सुकुमाल चरित्र
- ☞ चारुदत्त चरित्र
- ☞ गौतम स्वामी चरित्र
- ☞ महीपाल चरित्र
- ☞ जैन व्रत कथा संग्रह
- ☞ धन्य कुमार चरित्र
- ☞ सुलोचना चरित्र
- ☞ सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
- ☞ जिन दत्त चरित्र
- ☞ कुरल-काव्य
- ☞ तनाव से मुक्ति
- ☞ धम्म रसायणं
- ☞ आराधना कथाकोश-1, 2, 3
- ☞ तत्वार्थ सार
- ☞ योगामृत-1, 2
- ☞ सार समुच्चय
- ☞ महापुराण-1, 2
- ☞ चित्रसेन पद्मावती चरित्र
- ☞ नंगानंग कुमार चरित्र
- ☞ श्री राम चरित्र भाग-1, 2
- ☞ अमरसेण चरित्र
- ☞ नागकुमार चरित्र
- ☞ पुण्यास्रव कथाकोष भाग-1, 2
- ☞ करकंड चरित्र
- ☞ चेलना चरित्र
- ☞ रयणसार
- ☞ वीर वर्धमान चरित्र-1, 2
- ☞ सीता चरित्र
- ☞ प्रभंजन चरित्र
- ☞ सुरसुन्दरी चरित्र
- ☞ भद्रबाहु चरित्र
- ☞ हनुमान चरित्र
- ☞ मौनव्रत चरित्र
- ☞ सप्त व्यसन चरित्र
- ☞ योगसार प्राभृत-1, 2
- ☞ सुदर्शन चरित्र
- ☞ आध्यात्म तरंगिणी
- ☞ शांतिनाथ पुराण-1, 2
- ☞ धर्मामृत-1, 2
- ☞ सदार्चन सुमन
- ☞ पुराण सार संग्रह-1, 2
- ☞ कल्याणकारक
- ☞ आराधना सार
- ☞ योगसार प्राभृत-1, 2
- ☞ उपासकाध्ययन-1, 2
- ☞ नीतिसार समुच्चय
- ☞ दशामृत
- ☞ सिंदूर प्रकरण (सूक्ति मुक्तावली)
- ☞ प्रबोध सार
- ☞ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
- ☞ सम्यक्त्व कौमुदी
- ☞ पुण्यवर्धक
- ☞ चौंतीस स्थान दर्शन
- ☞ तनाव से मुक्ति भाग-2